ओ३म्

'गर्भ-रण्डा-रहस्य'

लेखक—

"कविताकामिनीकान्त"

"कविराज" श्री प० नाथूरामशङ्कर शर्मा, "शङ्कर"।

प्रकाशक—

हरिशङ्कर शर्मा,

हरदुआगंज, अलीगढ़

संवत् १९७६

प्रथम बार] [मूल्य ।=)

मुद्रक—
केसरीदास सेठ द्वारा
नवलकिशोर प्रेस लखनऊ में छपा.

ओ३म

समर्पण

जिसको भेद-विधान, न हठ से हटने देगा।
घोर अपव्यय, मान, न जिसका घटने देगा॥
बाल विवाह—प्रचार, न जिसको लटने देगा।
विधवा-दल संहार, न जिसको कटने देगा॥
जिसने मुझसी चालाक को, सुपद 'गर्भ-रण्डा' दिया।
उस 'हिन्दूपन' की नाक को, सरहस्य अर्पण किया॥

महामन्दभागिनी,

'कमला',

ओ३म्

भूमिका।

विधवा-विवाह का प्रचार न होने से आर्य-जाति की जो दुर्गति हो रही है उसे देख कर आठ आठ आँसू रोना पड़ता है। जिस जाति में लाखों बाल-विधवाएँ अपने करुण-क्रन्दन से कठोर पुरुषों के भी कलेजे कँपा रही हों-जिस देश में सहस्रों दुधमुँही बालिकाएँ, होश सँभालने से पूर्वही, 'राँड' बना दी गई हों, वहाँ के सामाजिक अत्याचार और निर्दय व्यवहार को देख एकदम क्रोध और करुणा का संचार होने लगता है। पुरुष वृद्धावस्था तक अपने अनेक 'विवाह' कर सकते हैं पर विधवाओं के विवाह का विचार करने मात्र से "सनातनधर्म" की नौका डगमगाने और बुनियाद थरथराने लगती है। विधवाएँ, मार की मार न सहार कर गुप्तरूप से अनेक अनुचित कर्म भलेही करें पर उनके लिए विवाह की आयोजना करना घोर घृणित और महानिन्दनीय काम है! ऐसा होने से 'हिन्दूपन' पाताल को पहुँच जाता तथा पौराणिक-धर्म का ढचर ढीला पड़ जाता है!

विधवा-विवाह के प्रचार का द्वार बन्द करते ही विषम व्यवहार और अनुचित अत्याचार का तार टूट जाता हो सो नहीं, प्रत्युत उसके कारण दीन-अबलाओं को पल-पल पर पीड़ित होना पड़ता है। खान-पान, रहन-सहन, आमोद-प्रमोद सम्बन्धी समस्त सुखों से दूर रहकर विधवाएँ अपने दुःखभरे जीवन-काल को कष्टपूर्वक काट

सकें तो काटें अन्यथा उनके कालकवलित होने में ही भलाई समझी जाती है। जिसकी मंजु-मनोहर मोहिनी मूर्ति को देख कर बड़े बड़े विचारशील बुद्धिमानों के चित्त चलायमान हो जाते हैं—जिसकी विकरालमुखी बाण वर्षा के विलक्षण वेग को बड़े बड़े धर्मधुरन्धर, धर्मवीर भी नहीं रोक सकते, उस असीम शक्तिशाली 'अनङ्गराज' को अल्पवयस्क अबोध अबलाएँ जीत कर विजय-दुन्दुभि बजा सकेंगी—यह कितनी असम्भव और कैसी बेजोड़ बात है !

जिसकी पृष्ठपोषकता में, इतिहास, पुराण, स्मृति आदि धर्म-ग्रन्थों के पन्ने के पन्ने भरे पड़े हों—जिसकी उपयोगिता, युक्ति-प्रमाणों द्वारा भलीभाँति सिद्ध हो चुकी हो—जिसकी महत्ता ने प्रत्येक विचारशील सज्जन के हृदय पर अधिकार कर रक्खा हो, उस विधवा विवाह के प्रचार में बाधा डालना अथवा उसके मार्ग को कंटकाकीर्ण करना पल्ले सिरे की अदूरदर्शिता और अव्वल दरजे की अविवेकता है। दयानन्द, ईश्वरचन्द्र, हरिश्चन्द्र, शङ्करलाल आदि विमुक्त पुरुषों की विशुद्ध आत्माएं हमारे इस अत्याचार को देख कर क्या कहती होंगी ? महाकवि हाली की 'फ़रियादे-बेवगान' का तनिक तो असर होना चाहिये था, सुप्रसिद्ध सनातनधर्मी विद्वान् श्रीराधाचरण गोस्वामी के लेखों का कुछ तो परिणाम निकलना चाहिये था। इन महानुभावों को यह ज्ञात न था कि हमारे लेखों की अवहेलना कर आर्य-जाति, विधवा-विवाह-प्रचार में, ऐसी मन्दगति, उदासीनता प्रत्युत कर्महीनता का परिचय देगी। विधवाओं का दुःख दूर करने के बदले उन्हें उस

से भरपूर करेगी। क्या विधवाओं के साथ ऐसा व्यवहार करना ठीक है? क्या ऐसा करने से वे मान-मर्य्यादा के महत्त्व को समझती हुई ब्रह्मचर्यव्रत-पालन कर सकती हैं? क्या इस अन्यायपूर्ण धाँधलबाज़ी का कभी श्रेयस्कर परिणाम निकल सकता है? कदापि नहीं! कदापि नहीं!!

विधवा रिस रोक रो रही है।
लाखों कुल-कानि खो रही है॥
जारों के गर्भ धारती हैं।
जनती हैं और मारती हैं॥

जो विधवाएँ प्रसन्नतापूर्वक ब्रह्मचारिणी रहना चाहें, रहें—बड़ी उत्तम बात है पर, उन्हें बलपूर्वक ऐसा करने को बाध्य करना अनुचित और अन्याय है। ऐसा करने से अच्छा परिणाम निकलने के बदले, आये दिन गर्हित गुप्त रहस्यों का भयानक भण्डाफोड़ हुआ करता है। समय पाकर सुसभ्य एवम् सुनागरिक बननेवाले बालकों को, जारज होने के कारण, जाति और कुल के अत्याचार तथा झूँठी लोकलज्जावश विधवाएँ उदर ही में दबोच डालती हैं। हम पूछते हैं कि 'सत्याचार' के नाम पर यह 'हत्याचार' नहीं तो क्या है? जिन लोगों में विधवा-विवाह की सुप्रथा प्रचलित है क्या उनमें कभी इस प्रकार की भ्रूण-हत्याएँ सुनी गई हैं? क्या वे जाति और कुल के भीषण भयङ्कर अत्याचार की भयावनी विभीषिका से भयभीत हो अपने अङ्गजों को अङ्ग-भङ्ग कर सकते हैं?

यों तो कदाचित् ही कोई विचारशील सज्जन होगा जो विधवाओं की दयनीय दुर्दशा से द्रवित हो उनके दुसह दुःख दूर करने की चिन्ता में निमग्न न हो, पर, तो भी

कवि का स्वभाव और भी अधिक कोमल होता है—उस में सहृदयता की मात्रा अधिकता से रहती है। इस प्रकार के दुर्व्यवहार, अत्याचार और अन्याय को देख कर कोमल हृदय पर जो गहरी चोट लगती है, उसे कविता द्वारा प्रकट कर दूसरों को अनुभव करा देना कवि का ही काम है। परन्तु इस कार्य को वही प्रतिभाशाली कवि कर सकता है जिसकी कविता के अक्षर-अक्षर से माधुर्य टपकता हो, शब्द-शब्द में मौलिकता भरी हो, पंक्ति-पंक्ति पर प्रसादगुण पाया जाता हो। शब्द भाण्डार एवम् अलङ्कार शास्त्र पर भी पूरा अधिकार रखता हो।

कविवर पं० नाथूरामशङ्कर शर्म्मा की गणना ऐसे ही कवियों में है। हर्ष की बात है कि 'गर्भ-रण्डा-रहस्य' आपही की ओजस्विनी लेखनी द्वारा लिखा गया है। इसमें शङ्करजी ने अपनी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभाशक्ति से एक कल्पित कथा द्वारा विधवाओं की जो ज़बरदस्त वकालत की है वह पढ़ने ही से जानी जा सकती है। आपने विधवाओं की दशा का जो विचित्र चित्र खींचा है उसे देख कर हृदय में सहसा, दुःख, घृणा, करुणा, आश्चर्य, भय, क्रोध और आनन्द के भाव जाग्रत् होने लगते हैं। यह कल्पित कथा पढ़ने वाले को पकड़ कर उसके हृदय को जकड़ लेती है। मूर्खा स्त्रियों को बहका कर धूर्त्त लोग किस प्रकार स्वार्थ-सिद्ध करते हैं—'पंडिताई' और 'पुरोहिताई' का जटिल जाल फैलाकर विवेकशून्य वञ्चक किस प्रकार गर्भस्थ बालक के जीवन को नष्ट-भ्रष्ट कर डालते हैं—प्रतारक पंचों के प्रचण्ड प्रपंच में पड़ सरल स्वभाव सज्जनों को किस प्रकार कष्ट-कल्पनापूर्वक काल काटना

पड़ता है-गुणहीन 'गोसाइयों' की गपोड़गाथा के गन्दे गीत गाकर, ज्ञान गौरवरहित ललनाएँ किसप्रकार पापाचार में प्रवृत्त होने लगती हैं-विकट स्थिति उपस्थित होने पर समयोचित क्रोध द्वारा, सती-साध्वी देवियाँ छद्मवेशधारी 'धर्मधुरन्धरों' को धिक्कारती हुई, किस प्रकार स्वधर्म-रक्षा में सन्नद्ध होती हैं-निराकार परमेश्वर के स्थान में विविध प्रकार की प्रतिमाएँ पूजने तथा तीर्थ-यात्रा करने पर समझदारों को, किसप्रकार उनकी निःसारता और निरर्थकता ज्ञात होजाती है इत्यादि अनेक अद्भुत घटनाओं का रहस्योद्घाटन इस पुस्तक द्वारा बड़ी ही मार्मिकता और उत्तमता से किया गया है-बहुत ही बढ़िया चित्र खींचा गया है।

पाठको ! लीजिए, 'हिन्दू-समाज' के अत्याचारों का चिट्ठा पढ़िये और विधवाओं की दुर्दशा पर आँसू बहाइये! याद रखिये, यदि इस महाअनर्थकारी कुत्सित-काण्ड को दूर करने का पूर्ण प्रयत्न न किया गया तो देश और जाति दोनों, अधमा-अधोगति के गहरे गढ़े में गिर, शोक-सन्तापपूर्वक, बेगुनाह बच्चों एवम् असहाय अबलाओं की आह से भस्म होते रहेंगे। निरर्थक निश्चयों और निष्फल प्रस्तावों द्वारा अब कोरे काग़ज़ काले करने का समय नहीं रहा। आवश्यकता है कि लोग कार्य-क्षेत्र में अवतीर्ण हों, विधवाओं की दहकती हुई दुःखाग्नि पर मिट्टी का तेल उड़ेलने के स्थान में पुण्य-सलिला भगवती भागीरथी के विमल वारि की विशुद्ध वर्षा करें-जुल्म-ज़ंजीर की कड़ी कड़ियाँ काटने के लिए कठोर कुधातु के कुल्हाड़े को काम में लावें-दुर्गति-दुर्ग

का दलन करने के लिए 'डायनामाइट' का प्रयोग करें।

निराशा-निशा में बैठ कर आलस्य-असुर की अर्चना करने वाले कर्महीन कायरो! उठो, हाथ-पाँव हिलाकर कुछ करना सीखो-जाति-सुधार और देश-उद्धार में संलग्न रहने वाले निपुण नेताओं का अनुगमन करो-उन्हें सहायता दो और साहस रक्खो। एक दिन आवेगा और अवश्य आवेगा जब आप अपने देश-जाति, पुर नगर, घर बार आदि सब को सुसम्पन्न एवम् समृद्धिशाली देखेंगे। बिचारी विधवाएं 'सधवा' होकर रोमाञ्चकारी आर्त्तनाद के स्थान में आनन्दप्रद मङ्गलगान करती हुई अपनी सन्तान को देश और जाति के ऊपर निछावर करेंगी।

"विदुषी उपजें, क्षमता न तजें,
व्रत धार भजें, सुकृती वर को।
सधवा सुधरें, विधवा उबरें,
सकलङ्क करें, न किसी घर को॥
दुहिता न बिकें, कुटनी न टिकें,
कुलबोर छिकें, तरसें दर को।
दिन फेर पिता, वर दे सविता,
कर दे कविता, कवि शङ्कर को॥"

हरदुआगज
दीपावली
१९७६

हरिशङ्कर शर्मा,

(ओ३म्)

(सोरठा)

शङ्कर ! मान कुमंत्र, जननी ने विधवा जनी।
मैं अबला परतंत्र, विवश गर्भ-रण्डा बनी॥

(रौला-छन्द)

(१)

सत्य एक अखिलेश, और सब सपनासा है।
विधवा-दल का दुःख, भयानक अपनासा है॥
मैं अपना अनुभूत, अमंगल दरसाती हूँ।
उच्च कुलों पर आज, अश्रु-विष बरसाती हूँ॥

(२)

जब से मुझको गर्भ, नरक में मिला बसेरा।
हा ! बालक नवजात, बना तबही वर मेरा॥
दिया राँड कर जन्म, जिन्होंने मुझ दुहिता को।
किया सुकर्म अनन्य, धन्य उन मातपिता को॥

(३)

उड़ा न वह वैधव्य, उड़ाते हैं सब जिस को।
मिलता मुझ को छोड़, 'गर्भ-रण्डा' पद किस को॥
जिस रहस्य को सौंप, शुद्ध अमरत्व मरूँगी।
सुनलो उस का सार, न कुछ विस्तार करूँगी॥

(४)

एक बटुक ने हाथ, पकड़ जननी का देखा।
सामुद्रिक-फल जाँच, बाँच कर विधि की रेखा॥
बोला उदर विलोक, जनोंगी विधवा लड़की।
सुनते ही कटुवाद, आग मा के उर भड़की॥

(५)

करके अँखियाँ लाल, लताड़ा उस पामर को।
उठजा ऊत उतार, अनारी अपने घर को॥
वज्र समान कठोर, वचन सुन वञ्चक तेरा।
उछल रहा है हाय !, कलेजा अब तक मेरा॥

(६)

उचित गालियाँ खाय, महाखल यों फिर बोला।
किया न तुम ने न्याय, न श्रीमुख सादर खोला॥
पढ़ कुमंत्र दो चार, विलक्षण प्रश्न बताये।
सब के उत्तर ठीक, समझ मा के मन भाये॥

(७)

यों ठग ने अपनाय, अटल-विश्वास बढ़ाया।
मा का मन फुसलाय, अमङ्गल-पाठ पढ़ाया॥
रच दुहिता का व्याह, राँड कर जो न जनोंगी।
तो तुम खोय सुहाग, निखसमी नारि बनोंगी॥

(८)

जटिल जाल की चाल, सरल जननी ने जानी।
अचला टेक टिकाय, अशुभ करने की ठानी॥
बोली विहित विधान, अर्थ व्यय से न डरूँगी।
पर कन्या बिन व्याह, कहो किस भाँति करूँगी॥

(९)

वह बोला सब काम, सिद्ध पण्डित करलेंगे।
पटली पै अभिषिक्त, एक गुड़िया धरलेंगे॥
करना उसका दान, पयोधर पीते वर को।
इस विधि से कल्याण, कमाना कुनबे भर को॥

(१०)

सुन मा ने प्रतिवाद, किया बेजोड़ कथन का।
जड़ के साथ विवाह, असम्भव है चेतन का॥
गुड़िया का भरतार, बने वर बिन जाई का।
सिद्ध करो सप्रमाण, मर्म इस चतुराई का॥

(११)

बोला बटुक लबार, तोड़ गड़बड़ की लंका ।
क्यों बलहीन असार, वृथा उपजी यह शंका ॥
जड़ वर शालिग्राम, बधू तुलसी चेतन है ।
क्या अब उनका ब्याह, कराना पागलपन है ॥

(१२)

प्रतिमा पूज प्रसन्न, सुरों को कर सकते हैं ।
क्या दुलहिन के ठौर, न गुड़िया धर सकते हैं ॥
पट पिण्डोदक आदि, पितर हम से पाते हैं ।
इस प्रकार से अन्य, अन्य मुख बन जाते हैं ॥

(१३)

इस विधि से संदेह, दूर कर रङ्ग जमाया ।
मा ने उस बकवाद, पोच पर ज्ञान गमाया ॥
पूछा वर नवजात, कहो किस भाँति मिलेगा ।
हँसकर बोला सिद्ध, सुनो इस भाँति मिलेगा ॥

(१४)

कल ही एक कुलीन, कुमर ने जन्म लिया है ।
विकट ग्रहों ने घेर, निपट अल्पायु किया है ॥
वह बालक दो बार, बिता कर मर जावेगा ।
पर विवाह का काम, सिद्ध सब कर जावेगा ॥

(१५)

उस लड़के का बाप, बुरा फल जान चुका है ।
परख मुझे दैवज्ञ, शिरोमणि मानचुका है ॥
यदि पूछो ग्रह-दोष, दान जप से हटता है ।
हटता है, पर पाप, न निर्धन का कटता है ॥

(१६)

यदि समझो मा-बाप, न अपना बालक देंगे ।
देंगे, पर धनहीन, दीन तुम से कुछ लेंगे ॥
इस का ठीक प्रबन्ध, दाम दे कर करदूँगा ।
जाकर उन के हाथ, ठनाठन से भरदूँगा ॥

(१७)

करदो सुखदारम्भ, भूल से दुःख न सहना ।
श्रेयस्कर सदुपाय, प्राणवल्लभ से कहना ॥
यों प्रपञ्च रच पोच, कड़ा कर मा के डर को ।
लेकर सौ कलदार, सिधारा अपने घर को ॥

(१८)

मझ दुखिया का बाप, रात को घर पर आया ।
मा ने अवसर पाय, रची इस ढब से माया ॥
स्वामी ! कुलरिपुरूप, दुरर्भक पेट पड़ा है ।
जिस का जन्म जघन्य, आप को बहुत कड़ा है ॥

(१६)

कह डाली भय-भार, लाद कर धर्मकहानी।
चतुर पिता ने चाल, खर्ब खल की पहँचानी॥
फटकारी डरपोक, समझ मेरी महतारी।
चढ़ बैठी प्रणरोप, अन्त को नर पर नारी॥

(२०)

दुहिता का कर ब्याह, उदर में राँड करूँगी।
प्रथम आप से नाथ !, नहीं विष खाय मरूँगी॥
जननी की हठ व्याधि, जनक ने वेढब जानी।
हार मान रिस रोक, कहा करना मनमानी॥

(२१)

पौढ़ रहे चुपचाप, उठे देखा दिनकर को।
न्हाकर भोजन पाय, पिता निकला बाहर को॥
आधा दिवस बिताय, बटुक व्याकुलसा आया।
घबराहट का ठाठ, बाँध गठरी भर लाया॥

(२२)

बोला कुटिल कुचाल, ग्रहों की कब टलती है।
उस लड़के की ऊल, ऊल पसली चलती है॥
जोड़ मिल गया ठीक, बड़ा चोखा घर वर है।
करलो अपना काम, आज ही का अवसर है॥

(२३)

लो ! सहस्र कलदार, निकालो झटपट जाऊँ ।
देकर शुल्क समस्त, ससकते वर को लाऊँ ॥
माता सुन कर हाल, घुसी घर में द्विविधासी ।
रख दी रोकड़ काढ़, लपक लेगया विसासी ॥

(२४)

फिर पाखण्ड प्रवीण, महोदर दो ठग आये ।
बोले वचन विनीत, बटुकजी के गुण गाये ॥
मा की लगन लगाय, मनोहर मण्डप छाया ।
पूजे कलश गणेश, ग्रहों का नवक पुजाया ॥

(२५)

बटुक वीर ने आय, कुपथ की पद्धति खोली ।
पढ़ने लगा कुमन्त्र, बदल कर बोली बोली ॥
एक पटा पर खोल, गाँठ से रखदी पुड़िया ।
धरली उस के पास, बनी गूदड़ की गुड़िया ॥

(२६)

मा ने निरख चरित्र, कहा वर साथ न लाये ।
ग्यारह सौ कलदार, कहाँ किस को परखाये ॥
बोला बटुक लबार, लिया शिशु देकर छोड़ा ।
भाग चला तन त्याग, इसे पकड़ा कब छोड़ा ॥

(२७)

वर का लिङ्ग शरीर, बँधा है इस पुड़िया में।
वरनी का प्रतिबिम्ब, दरसता है गुड़िया में॥
गुड़िया का कर वाम, पड़ी पुड़िया पै धरदो।
झटपट कन्यादान, लग्न के भीतर करदो॥

(२८)

जननी ने झुँझलाय, कहा यह आडम्बर है।
किस का रचा विवाह, न कन्या और न वर है॥
कुक्कुर से तुम तीन, अनर्गल भोंक रहे हो।
अँखियों में धिक् धूलि, कुमति की झोंक रहे हो॥

(२९)

ठग ने किया विचार, अभी कुछ और कहेगी।
बरजूँ दर्प दिखाय, नहीं तो चुप न रहेगी॥
गरजा सिंह समान, घुड़कने लगा घमण्डी।
बस आगे बकवाद, न करना चञ्चल चण्डी॥

(३०)

ठगिया लंठ लबार, समझती है तू मुझ को।
ठगनी देकर शाप, भस्म करदूँगा तुझ को॥
ब्रह्म-तेज-बलसे न, पलक-पिट्टो डरती है।
बरद बड़ों में दोष, निरख निन्दा करती है॥

(३१)

देख प्रचण्ड प्रमाद, असुर के शिष्य पुकारे।
अनघे! रोष बिसार, दूर करलो भ्रम सारे॥
बटुकनाथ से सिद्ध, आपदुद्धारक कम हैं।
इन के भक्त अनन्य, बड़े बड़भागी हम हैं॥

(३२)

जो अपना तन त्याग, चला था प्रेतनगर को।
पुड़िया में किस भाँति, बाँधलाये उस वर को॥
उपजा है यह प्रश्न, तुम्हारे बोध अधम से।
इस का उत्तर ठीक, सुनो समझो लो! हमसे॥

(३३)

उपदेशक गोकर्ण, धुन्धकारी सुनकर था।
कठिन बाँस की पोल, पतित भ्राता का घर था॥
मुक्त हुआ वह प्रेत, भागवत का फल पाया।
वर भी उस की भाँति, पकड़ पुड़िया में आया॥

(३४)

पाय प्रसिद्ध प्रमाण, शिथिल शङ्का हिय हारी।
बटुक पोच के पाय, पकड़ बोली महतारी॥
पाहि! पाहि!! अपराध, क्षमा करिये प्रभु मेरे।
यों कर जोड़ विनीत, वचन बोले बहुतेरे॥

(३५)

यों मिट गया विवाद, किसी का कोप न भड़का ।
गुड़िया का भरतार, बना पुड़िया का लड़का ॥
पुड़िया पटकी फाड़, टाँड पै गुड़िया धरदी ।
इस प्रकार से राँड, उदर ही में मैं करदी ॥

(३६)

ठग सोचा यदि राम, न इस ने लड़की जाई ।
तो बस बिगड़ी बात, प्रकट यों टेक टिकाई ॥
जो दुलहिन का जीव, उड़ा दुलहा से अड़का ।
तो तुम लड़की छोड़, जनोगी सुन्दर लड़का ॥

(३७)

बोले युगल उलूक, लमक लालच के मारे ।
धन्य धन्य गुरु देव, वचन बढ़िया उच्चारे ॥
यह प्रलाप प्राचीन, नहीं पड़ गया नर्यानों ।
प्रचुर दक्षिणा पाय, पाय सटके शठ तीनों ॥

(३८)

मैं नव मास बिताय, विकल जननी ने जाई ।
सुन कर मेरा जन्म, उदासी पितु पर छाई ॥
दिया न कुछ भी दान, न मङ्गल-गान कराया ।
हुआ न उत्सव होम, न विधि से नाम धराया ॥

(३९)

क्रम से बढ़ी निदान, हुई मैं सात बरस की।
सुनने लगी प्रसङ्ग, कहानी श्यामल*रस की॥
ललनागण के गूढ़, विचित्र चरित्र निहारे।
जगमोहन † के गीत, लगे मुझ को अति प्यारे॥

(४०)

देख मुझे कर प्यार, जनक ने बात चलाई।
बिटिया के अनुरूप, खोज वर करें सगाई॥
सागरमल का पुत्र, "सुबोध" बड़ा सुन्दर है।
उत्तम कुल विख्यात, जतीला बढ़िया घर है॥

(४१)

मा सुन उठी पुकार, ननद विधवा है मेरी।
जो पति को दिन रात, तरसती है बहुतेरी॥
उस का पुनर्विवाह, किसी धग्गड़ से करदो।
पर दुहिता को देख, दूसरी बार न वरदो॥

(४२)

सुन कर बोला बाप, अरी यों क्या बकती है।
लड़की बिना विवाह, राँड कब हो सकती है॥
जिस कपटी की बात, कुमति में भर छोड़ी है।
क्या उस के अनुसार, अकरनी कर छोड़ी है॥

---

* श्यामल-रस=शृंगाररस।

† जगमोहन=ललनागण की एक विशेष गायनसभा।

(४३)

मा गरजी अनखाय, अजी शुभ काम किया है।
इस को राँड बनाय, सुहाग बचाय लिया है॥
अब कुल के प्रतिकूल, न भाँमर पड़नेदूँगी।
सत्य 'सनातन-धर्म', न हाय! बिगड़नेदूँगी॥

(४४)

विवश पिता ने पञ्च, और पंडित बुलवाये।
सब ने आशय जान, गाल इस भाँति बजाये॥
जो लड़की फर ब्याह, सुहाग विहीन जनी है।
वर सकता है कौन, उसे पद्धति न बनी है॥

(४५)

मा ने नयन नचाय, कहा कुछ और कहोगे।
अथवा पञ्च-प्रमाण, मान कर मौन रहोगे॥
किया जनक ने शोच, मनोरथ हा! न फलेगा।
परखे पंडित पञ्च, न इन से काम चलेगा॥

(४६)

बेटी बिन अपराध, रही घर हाय! कुमारी।
नारि करे उपहास, मिले पशु-पंच-अनारी॥
शुभचिन्तक पाखण्ड, खण्ड के सुभट घने हैं।
अगुआ हे हरि हाय, हमारे बधिक बने हैं॥

(४७)

जिस को दुर्जन-रोष,—न्याय विधवा करदेगा।
उस को अक्षत-योनि,—बाद फिर भी वर देगा॥
विधि से वर इक्कीस, मिले दिव्या दुलहिन को।
जटिला के पति सात, बने बतलादूँ इन को॥

(४८)

कन्या * परम पवित्र, पाँच सब जान रहे हैं।
ऐसे विविध प्रसङ्ग, सुबोध बखान रहे हैं॥
पर ये ऊत अजान, भला कब कान धरेंगे।
अधम नारकी नीच, न उत्तम काम करेंगे॥

(४९)

विधवा दल के शत्रु, जार व्यभिचार प्रचारें।
गर्भ गिराय गिराय, अहर्निश अर्भक मारें॥
ये अड़ की अनरीति, अनीति न घटने देंगे।
निठुर नकीले नाक, न हठ की कटने देंगे॥

(५०)

इस विधि मेरा बाप, कुढ़े था मन ही मन में।
तन में दुःख दुराय, न उगला कोप कथन में॥
होकर हाय! हताश, कुमत की पोल न खोली।
पञ्च प्रपञ्च पछाड़, कपट की राशि न तोली॥

---

* कन्या परम पवित्र पांच=तारा १ मन्दोदरी २ अहल्या ३ कुन्ती ४ और द्रौपदी ५।

(५१)

पितु को मौन निहार, प्रतारक पञ्च पुकारे ।
सुनलो धर्म-प्रबन्ध,-विधायक बोल हमारे ॥
जो सब के प्रतिकूल, यथारुचि बात कहोगे ।
तो तुम अपनी जाति, पाँति से अलग रहोगे ॥

(५२)

यों बल दर्प दिखाय, उठे सब ऊत अड़ीले ।
पण्डित भोजन-भट्ट, गये गौरव-गरबीले ॥
सब से पिण्ड छुड़ाय, जनक जननी से बोला ।
फूटे तुम पर और, जाति पर बम का गोला ॥

(५३)

अब से भोग-विलास, योग सब तुम से छोड़ा ।
त्यागे घर पुर देश, जाति मत से मुख मोड़ा ॥
इस प्रकार धिक्कार, विपिन की ओर सिधारा ।
बिछुड़े पति ने आय, न अब तक देखी दारा ॥

(५४)

पति का पक्ष गिराय, विजय जननी ने पाई ।
मुझ को राँड बताय, कहीं पर की न सगाई ॥
बुआ गई ससुराल, रही मा निपट अकेली ।
सखियों में सब ठौर, खेल खुल खुल मैं खेली ॥

(५५)

द्वादश वर्ष बिताय, गया बालकपन मेरा।
उमगा यौवन अङ्ग, ढङ्ग रस-पति ने फेरा॥
अँखियों में मद-मत्त, मनोभव की छवि छाई।
बढ़ने लगे उरोज, कमर की घटी मुटाई॥

(५६)

पंकज, कदली, कंबु, चाप, चपला, शशि, तारे।
दाड़िम, श्रीफल, सेब, सरस-बिम्बा-अरुणारे॥
भृङ्ग, भुजङ्ग, कुरङ्ग, कीर, कोकिल, हरि, हाथी।
मुझ नवला के अङ्ग, बने इन सब के साथी॥

(५७)

मेरा अनुपम रूप, नारि नर सब को भाया।
जाति-प्रथा पर घोर, कठोर कलंक लगाया॥
जिस के लिये अनीति, उदर ही में रच डाली।
हा! वह कल्पित राँड, बने किस की घरवाली॥

(५८)

मैं अपना मुख-चन्द्र, चहूँ दिस चमकाती थी।
नव युवकों की ओर, दिव्य-दुति दमकाती थी॥
चोटी लटक दिखाय, त्रिगुण में कसलेती थी।
नागिन सी बल खाय, न किस को डसलेती थी॥

(५९)

मेरे नयन निहार, पलक उपमा के भूले ।
खंजन, मीन, कुरङ्ग, डरे अरविन्द न फूले ॥
जिस रसिया से आँख, अचानक लड़जाती थी ।
बिजली सी उस प्रेम, भक्त पर पड़जाती थी ॥

(६०)

करती थी मुखपद्म, खिलाय विलास बतीसी ।
युगल दौज के इन्दु, उगलते थे बिजली सी ॥
जिस की ओर विलोक, तनक मैं हँसजाती थी ।
उस की चाह चखोर,-चसक में फँसजाती थी ॥

(६१)

श्याम चिबुक का बिन्दु, घटाता था दर तिल की ।
करता था कलकण्ठ, निपट निन्दा कोकिलकी ॥
मेरी मधुर सुमञ्जु, रसीली सुनकर बोली ।
करती थी गुण-गान, तरुण रसिकों की टोली ॥

(६२)

गोल कठोर उरोज, कुम्भ उन्नति के उकसे ।
कञ्चुक में कर बन्द, कसे दरसे कन्दुक से ॥
कहते थे ललचाय, छैल छलिया आपस के ।
कसके मनके हा ! न, नये निबुआ दो रस के ॥

(६३)

भूषण धार अमोल, ओढ़ कर सुन्दर साड़ी।
कर सोलह शृङ्गार, निरखती थी फुलवाड़ी॥
मदन-दूत दो चार, तड़पते मिल जाते थे।
दर्शन का फल पाय, सुमन से खिल जाते थे॥

(६४)

पण्डितराज प्रवीण, पुरोहित, पञ्च, पुजारी।
कहते थे छवि देख, चन्द्रवदने! बलिहारी॥
बाहर के कुलवीर, धर्म-दुहिता कहते थे।
भर भीतर दुर्भाव, भीरु व्याकुल रहते थे॥

(६५)

जननी ने घर एक, प्रबन्धक रख छोड़ा था।
जिस का मेल-मिलाप, दिवस निशि का जोड़ा था॥
हम दोनों पर प्यार, एक मन से करता था।
युगल तुम्बियाँ बाँध, धर्मसरिता तरता था॥

(६६)

अँगुली पै दिन रात, मनोज-विलास नचाया।
पर मेरा मन मस्त, किसी ने पकड़ न पाया॥
कर सकता फिर कौन, यथारुचि मन के चीते।
इस विधि से छै सात, समङ्गल हायन बीते॥

(६७)

अटके श्वान अनेक, मदन की मार पड़ी थी।
कुतिया पूँछ दबाय, अकेली विकल खड़ी थी॥
मानो प्रकृति विहार,-विडम्बन दिखलाती थी।
नर नारी बिन जोड़, बुरे यह सिखलाती थी॥

(६८)

तजें न दम्पति-भाव, सकल जोड़े सुखभोगी।
नर मादा बिन जोड़, रहें तो यह गति होगी॥
मैं समझी अब एक, ठिकाना अपना करलूँ।
विधवापन को छोड़, किसी नागर को वरलूँ॥

(६९)

फिर मा का मुख देख, भबूका मन में भबका।
माता बन कर वैर, लेरही मुझ से कब का॥
कुल का किया विनाश, निकाला घर से पति को।
करदी धन की धूलि, तजेगी हा! न कुमति को॥

(७०)

रुका न मन का रोष, अकड़ मा से यों अटकी।
मुझ को जन्म बिगाड़, नरक में तू ने पटकी॥
किया विरोध वियोग, न पति की सम्मति मानी।
खल-मण्डल की बात, अनुत्तम उत्तम जानी॥

(७१)

अब तक मैं ने प्रेम, पसार न खेल किया है ।
कहदे किस के साथ, निरन्तर मेल किया है ॥
जिस चाकर की लाग, लगी तुझ से लड़ती है ।
मेरे तन पर छाँह, न उस की भी पड़ती है ॥

(७२)

तू जिन को मुनि-राज, महाजन मान चुकी है ।
जिन को धर्म-धुरीण, विशुद्ध बखान चुकी है ॥
क्या उन के अपवित्र,-विचित्र, चरित्र दुरे हैं ।
अगुआ पण्डित पञ्च, प्रपञ्च-प्रवीण बुरे हैं ॥

(७३)

ठगियों के सब ठाठ, निषिद्ध निहार चुकी हूँ ।
घूम घूम कर ठौर, ठौर झख मार चुकी हूँ ॥
रेवड़ भर में दम्भ, अबोध अधर्म समाये ।
धर्म, सुशील, सुकर्म, किसी के निकट न पाये ॥

(७४)

परखे सन्त, महन्त, पुरोहित, पण्डित, पण्डे ।
देख लिये रस-रङ्ग, भरे सब के हथखण्डे ॥
झगड़ें झक्कड़ झूँठ, झपट झंझट के झोंगे ।
धर्म-वीर, व्रत-शील, विशारद बिरले होंगे ॥

(७५)

दीन, दरिद्र, अनाथ, अन्ध संकट सहते हैं ।
खल पाखण्ड पसार, सदा सुख से रहते हैं ॥
छलियों का सब ठौर, अधिक आदर होता है ।
हँसता फिरे अधर्म, धर्म घुट घुट रोता है ॥

(७६)

आप अनेक विवाह, बुढ़ापे तक करते हैं ।
धार धार सिर मौर, नई वरनी वरते हैं ॥
पर विधवा आजन्म, दूसरा वर न वरेगी ।
कर पञ्चामृत-पान, पुण्य भर पेट करेगी ॥

(७७)

करता फिरे पवित्र, पतुरिया का घर कोई ।
छिड़क रहा है छूत, बाल-विधवा पर कोई ॥
ससुर अछूता प्यार, पतोहू पर करता है ।
अनुज-वधू की ओर, जेठ सिसकी भरता है ॥

(७८)

बालक जन छै सात, मरी जिस की घरवाली ।
रखली उस ने राँड, सड़ाइन अथवा साली ॥
इतने पर भी हाय, तनक संतोष न देखा ।
विधवा की विपरीत,—रीति पर करे परेखा ॥

(७६)

जिस घर में दो चार, सुहागिन रहती होंगी।
भोग-विलास-प्रसङ्ग , परस्पर कहती होंगी॥
विधवा उन की प्रेम,–कथा सब सुनती होगी।
मदन मसोसे मार, मार सिर धुनती होगी॥

(८०)

जिस विधवा का गर्भ, जलोदर सा बढ़ता है।
घरवालों पर घोर, पाप उस का चढ़ता है॥
पोच पेट पटकाय, प्राण शिशु के हरते हैं।
गिर न सके तो हाय, डबल हत्या करते हैं॥

(८१)

सुन कर मेरे बोल, बिगड़ कर बोली मैया।
बनजा लाज बिसार, किसीकी "धरमलुगैया"॥
कालकूट कर कोप, यहाँ उगले मत संडी।
चकले में चल बैठ, कहा कर कुचटा रंडी॥

(८२)

मा के परुष कठोर, शब्द सुन कर मैं रोई।
मन में समझी हाय, न मेरा हितकर कोई॥
आगे वचन असार, वृथा न कहे न कहाये।
लौट पड़ी चुपचाप, अश्रु अविराम बहाये॥

(८३)

पर विष-बोरी बात, गड़ी उर में बरछी सी ।
मैं अपनी सुधि भूल, गिरी भिंच गई बतीसी ॥
मा ने विकल विलोक, बिछा कर खाट सुलाई ।
खिड़की खोल पुकार, पड़ोसिन पास बुलाई ॥

(८४)

चन्दनश्वेत, उशीर *, छड़ीला कूट खरल में ।
घोट घना घनसार †, मिलाये शीतल जल में ॥
मेरे तन पर ठौर, ठौर छिड़का वह पानी ।
हुआ न कुछ भी चेत, मृतक जननी ने जानी ॥

(८५)

बाहर जल की ठंड, आग भीतर की भड़की ।
उछल पड़ा हत्पिण्ड ‡, धड़ाधड़ छाती धड़की ॥
उखड़ा श्वास सवेग, चली चञ्चल गति नाड़ी ।
इतने पर भी हाय, न चमका चित्त खिलाड़ी ॥

(८६)

बाल बिचूर बिचूर, पड़ोसिन घी मलती थी ।
बिजना जल में बोर, बोर जननी झलती थी ॥
ठीक पड़ा प्रतिकार, निकाली गरमी तनकी ।
पाय सुगन्धित वायु, घटी व्याकुलता मनकी ॥

---

* उशीर=खस । † घनसार=कपूर । ‡ हत्पिण्ड=दिल ।

(८७)

शीतल सौरभ पाय, तमक तन्द्रा उठ भागी ।
हलका हुआ शरीर, शिथिल चेतनता जागी ॥
सुनती थी सब शब्द, न अँखियाँ खोल सकी मैं ।
था नीरस मुख बन्द, न कुछ भी बोल सकी मैं ॥

(८८)

बीत गया अतिकाल, न मेरी सुगति निहारी ।
तब तो खाय पछाड़, विकल बोली महतारी ॥
निकला हाय ! नसीब, ललीका निपट निकम्मा ।
अब क्या करूँ उपाय, बोल चुनमुन की अम्मा !

(८९)

जो न बटुकजी * वीर, जेल में जाकर मरते ।
तो वे उचित उपाय, आय बिटिया का करते ॥
उन सा सिद्ध-प्रसिद्ध, प्रतापी नर न मिलेगा ।
'कमला' † का मुखपद्म, अरी क्या अब न खिलेगा ॥

(९०)

देख मुझे बिन चैन, पड़ोसिन भी घबराई ।
अपने अँसुआ पोंछ, बिलखती मा समझाई ॥

---

* गर्भरण्डा की मा का सा किसी अन्य को धोखा देने के अपराध मे बटुकजी महाराज जेल में ठूसे गये थे और वे वहीं मरगये ।

† कमला=गर्भरण्डा का असली नाम ।

राधा—वर व्रजराज, दया कर दुःख हरेंगे ।
हित की ठोकर मार, अमङ्गल दूर करेंगे ॥

(६१)

श्री, गणेश, कमलेश, प्रजेश, महेश, भवानी ।
शेष, सुरेश, दिनेश, निशेश, महा सुखदानी ॥
पितर, देवता, सिद्ध, नाग, तीरथ, ग्रह, सारे ।
करदें इसे सचेत, पाप-कुल काटन हारे ॥

(६२)

देव दयालु पुकार, सुनेंगे मत घबरावे ।
सब को मन्नत मान, मान कर क्यों न मनावे ॥
वीरभद्र, हनुमान, भूत-गण, भैरव, काली ।
इन को भोग, प्रसाद, चढ़ाना भर भर थाली ॥

(६३)

भुमियाँ, चामड़ पूज, मसानी का मुख भरना ।
मियाँ, मदार मनाय, जात जाहर की करना ॥
जखई के गुण गाय, भुनी मकई बटवाना ।
मद की धार चढ़ाय, श्वेत शूकर कटवाना ॥

(६४)

जितने देव अदेव, चुड़ेल, अछूत जनाये ।
वे सब सीस नवाय, सभक्ति, समान मनाये ॥

सर असुरों की जाँच, घड़ी भर में बस होली।
हुआ न कुछ भी लाभ, पड़ोसिन फिर यों बोली॥

(६५)

बिटिया की सुन वीर, किसी से लगन लगी है।
ठगिया ने रस खेल, खिला कर ठीक ठगी है॥
इस पै उस के प्रेम,-प्रबल का भूत चढ़ा है।
आज वही अनुभूत, भयानक रोग बढ़ा है॥

(६६)

माता सुन कर बोल, उठी बस जान गई तू!
इस के मन का गूढ़,-भेद पहँचान गई तू!!
मेरी विनय प्रमाण,-रूप से सब कह डाली।
अपने वज्र समान, कथन की छाप छुपाली॥

(६७)

अस्थिर मन*, आलस्य, अरुचि, तन्द्रा रहती है।
सूख चले सब अङ्ग, हृदय-पीड़ा सहती है॥
कहती है कटुशब्द, बहुत ही कम खाती है।
कुल-पद्धति को गैल, नरक की बतलाती है॥

---

*श्लोक—कामज चित्तविभ्रंशस्तन्द्राऽऽलस्यमभोजनम्।
हृदये वेदना चास्य गात्रं च परिशुष्यति॥
—श्रीमाधवाचार्यः

(६८)

समझी रोग—निदान, कहानी सुन कर सारी।
फिर बोली कर हाय, चुनमुना की महतारी ॥
मार मनोहर मार, पजारे मार न किस को।
क्या अब तू इस भाँति, रोक सकती है इस को ॥

(६६)

मालिक ने अनखाय, शपथ खा कर तू छोड़ी।
सीता बन कर क्यों न, रही मन मार निगोड़ी ॥
तू कर भोग-विलास, पवित्र प्रसन्न रहैगी।
यह मनोज की मार, बता किस भाँति सहैगी ॥

(१००)

इस को अपना आप, स्वयंवर कर लेने दे।
मनमाना अनुरूप, वीर वर वर लेने दे ॥
ठीक ठौर अपनाय, सदा सुख पाय टिकेगी।
इस प्रकार तू जाति, और कुल से न छिकेगी ॥

(१०१)

सुन कर वीले बोल, बहुत सकुची मा मेरी।
बोली बहिन अनर्थ,-भरी है अनुमति तेरी ॥
दुहिता को यह घोर,-कुकर्म न करनेदूँगी।
वर न दूसरी बार, किसी विधि वरनेदूँगी ॥

(१०२)

व्रजमण्डल में विश्व,-विलासी वल्लभकुल है।
जिस के पास असीम, दया आनन्द अतुल है॥
उस कुल के गोस्वामि, जगद्गुरु गोकुलवासी।
कर देंगे कृतकृत्य, इसे कर अपनी दासी॥

(१०३)

पाय मंत्र उपदेश, सदा शुभ काम करेगी।
कर गुरु को सर्वस्व, समर्पण नाम करेगी॥
इस प्रकार से शील,-शिरोमणि होसकती है।
मगन रहेगी, लाज, न कुल की खोसकती है॥

(१०४)

था मुख बन्द न देश, दिया मा की अनबन में।
पर मैं अपने आप, लगी कहने यों मन में॥
वृष बिजार गोस्वामि, अवश्य कहासकते हैं।
इस "पदवी" को सभ्य, सुबोध न पासकते हैं॥

(१०५)

मा का विशद विचार, पड़ोसिन के मनभाया।
कहने लगी उपाय, हाथ उत्तमतर आया॥
भवसागर को पार, करेगी तुरत नवेली।
वल्लभ-कुल की वीर, करादे चटपट चेली॥

(१०६)

यों अपने अनुकूल, पड़ोसिन की मति पाली ।
झट मा ने गुरुगाँठ, लगा कर टेक टिकाली ॥
दुहिता को रसिकेश, भक्ति-रस-युक्त करूँगी ।
यदि न उठी तो आज, हलाहल खाय मरूँगी ॥

(१०७)

मरने का प्रण ठान, प्रशस्त प्रयत्न निकाला ।
चम्मच से मुख चीर, विष्णुचरणोदक डाला ॥
सरस होगया कण्ठ, खुले दृग मैं कुछ बोली ।
जननी ने चख चूम, कहा बिटिया उठ सोली ॥

(१०८)

कर श्रीगोकुलनाथ, देव की विनय बड़ाई ।
फिर स्वाभाविक प्रेम, बढ़ा मिटगई लड़ाई ॥
सूखे पट पहनाय, मिली मुझ से महतारी ।
खाय पड़ोसिन पान, समोद स्वगेह सिधारी ॥

(१०९)

कर न सकी वैधव्य, हटा कर मन के चीते ।
अटका पञ्च-प्रपञ्च, न संकट के दिन बीते ॥
होकर हाय ! हताश, रही पछताती घर में ।
ठगियों को भर पेट, कोसती थी दिन भर में ॥

(११०)

बोली अति अकुलाय, दुःख हर हे हर ! मेरा।
संकट-मोचन नाम, सुखद शंकर है तेरा॥
घेर घेर घर घोर,-दुष्ट दल प्राण हरेगा।
तुझ बिन मेरा कौन, अमङ्गल दूर करेगा॥

(१११)

समझ रहे दुर्जेय, जिसे मुनि योगविहारी।
जिस ने किये अधीर, धीर पण्डित व्रतधारी॥
वह कन्दर्प सदर्प, शिलीमुख*छोड़ रहा है।
मुझ अबला का रक्त, निशंक निचोड़ रहा है॥

(११२)

चपला चमके हाय, नसारे श्यामल घन में।
दमके दुरे स्वरूप, राधिका का हरितन में॥
मुझ पर वैरी वज्र, पड़ा पावस की छवि का।
सिद्ध हुआ सुप्रसिद्ध, सवैया शङ्कर कवि का॥

---

* शिलीमुख=बाण।

गर्भरण्डाकाबतायाहुआ—

† (सवैया)

साथ दली रसराज महा भट, पावस की छवि सैन घनेरी।
धार प्रसून शरासन सायक, भीर युवा युवतीन की घेरी॥
फूक रह्यो विधवा दल को कुल, की अनरीति ने आग बखेरी।
भूल गयो रतिनायक शङ्कर, तीसरे चक्षु की ताकनि तेरी॥

(११३)

नदियाँ वेग बढ़ाय, पाय पानी जल-धर से ।
मिलती हैं तज मान, प्राणवल्लभ सागर से ॥
यों सधवा सुख भोग, प्यार पति पै करती हैं ।
दुखिया अक्षतयोनि, बालविधवा मरती हैं ॥

(११४)

कोमल पल्लव पाय, हरे तरु फूल रहे हैं ।
सरस अनेकाकार, फलों फल भूल रहे हैं ॥
लिपट लपेटा मार, वल्लियाँ लटक रही हैं ।
हा ! विधवा बिन जोड़, अकेली भटक रही हैं ॥

(११५)

कोइल, चातक, मोर, आदि सब चिड़ियाँ बोलें ।
बच्चों पर कर प्यार, चहकती चुगती डोलें ॥
एक नहीं बिन जोड़, निकट मादा के नर हैं ।
मुझ अधमा के साथ, न प्यारा पुत्र न वर है ॥

(११६)

दिन बिन दोनों ओर, विषम दुर्गति होती है ।
कूके चक उस पार, इधर चकई रोती है ॥
अपने पति से रात, बिताय मिलाप करेगी ।
विवश न मेरी भाँति, सदैव विलाप करेगी ॥

(११७)

झुलसे कोमल अङ्ग, यथा जलगया जवासा।
अँसुओं से बद होड़, न कुछ बरसा चौमासा॥
अँखियों की जय बोल, गई बरसात बिचारी।
खंजन दिये दिखाय, शरद ने आँख उघारी॥

(११८)

रहा न भू पर पङ्क, न ऊपर बदली छाई।
कर सुन्दर शृङ्गार, दिवाली दुलहिन आई॥
करने लगा प्रकाश, तले घर अन्ध अँधेरा।
कज्जल उगले देख, दिया उज्जल मुख तेरा॥

(११९)

चार मास भरपूर, सर्व सुर सो कर जागे।
कुम्भकर्ण-पद पाय, न सोते असुर अभागे॥
नेक न अज्ञ अदेव, देव–दल से डरते हैं।
विधवापन का बोझ, बच्चियों पर धरते हैं॥

(१२०)

मङ्गलमूल महेश, तुझे मुनि बतलाते हैं।
जीव तुझे अपनाय, अमर-पदवी पाते हैं॥
हे प्रभु परमोदार, सर्व सुखदाता वर दे।
बन्धन काट कृपालु, मुक्त मुझको भी कर दे॥

(१२१)

जननी ने गुरु देव, निमन्त्रण भेज बुलाये।
सेवक वृन्द समेत, पालकी पर प्रभु आये॥
कर स्वागत सत्कार, उतारे हरि-मन्दिर में।
पधराये बिछवाय, सजीला मञ्च अजिर में॥

(१२२)

दर्शन को तज काम, धाम दर्शक उठ धाये।
जीवन का फल पाय, मनोरथ सिद्ध कहाये॥
मैं छक रही निहार, मदनमोहन की झाँकी।
मन में अटकी आय, चुटीली चितवन बाँकी॥

(१२३)

मुझ को भीड़ हटाय, निकट लेगई लुगाई।
सरस रूप-लावण्य, निरखने लगे गुसाई॥
धुलवाये पद-पद्म, परमहित मेरा सोचा।
अँगुली पर अंगुष्ठ, उठा कर दिया दबोचा॥

(१२४)

पुष्ट प्रमाण सुनाय, स्वमत का मर्म जताया।
हँस कर कंठी बाँध, मनोहर मंत्र बताया॥
उगल पान की पीक, चटा कर चेली करली।
चरणों पै चढ़वाय, भेंट गोलक में भरली॥

(१२५)

गोकुलपति गोविन्द, मिलनकी रीति सिखादी।
परम रम्य गोलोक,-धाम की सड़क दिखादी ॥
इस प्रकार गोस्वामि, काट मेरे अघ–दल को ।
दे उत्तम उपदेश, सिधारे व्रज-मण्डल को॥

(१२६)

मा ने अति सुख मान, सुमङ्गल गान कराया ।
ललनागण में बैठ, भजन मैं ने गढ़ गाया ॥
सुनतेही वह गीत*, हँसी चुनमुन की मैया ।
देकर मुझे असीस, निछावर किया रुपैया ॥

---

* (गर्भरण्डाका गीत)

पाये श्रीगुरु प्रेम पुजारी ॥ टेक ॥
मोहनमन्त्र कान में फूंका, हार बनी हरिप्यारी † ।
पीक चटाय बनाली चेली, अँगुली दाब दुलारी ॥
पाये श्रीगुरु प्रेम पुजारी ॥
भाँति भाँति के भोग लगाये, लेकर भेंट करारी ।
पान खाय पौढ़े पलका पै, धर्मवीर व्रत–धारी ॥
पाये श्रीगुरु प्रेम पुजारी ॥
पुष्ट पन्थ के उपदेशों से, कुचली दुविधा दारी ।
फूटे मुण्ड ताप–त्रिशिरा के, हित की ठोकर मारी ॥
पाये श्रीगुरु प्रेम पुजारी ॥
मैं रँडिया शङ्कर स्वामी ने, भवसागर से तारी ।
घर ही में गोलोक दिखाया, बलिहारी ! बलिहारी ! !
पाये श्रीगुरु प्रेम पुजारी ॥

† तुलसी ।

(१२७)

दिनभर गाये गीत, परम आनन्द मनाया।
घर घर भाजी बाँट, लोक-व्यवहार बनाया॥
बरसी धन की धूलि, नेगियों पर बहुतेरी।
बोली निकट बिठाय, मुझे निधड़क मा मेरी॥

(१२८)

अब तो तू शुभ कर्म, धर्म अपनाय चुकी है।
श्रीगुरु–मुख से मन्त्र,–महाफल पाय चुकी है॥
यद्यपि उलटा काम, कदापि न होगा तुझ से।
जाति-नीति, कुलरीति, समझले तो भी मुझ से॥

(१२९)

गिरिधर, गोपीनाथ, गोप-गुरु, गोकुलवासी।
राधिकेश, रसिकेश, रमापति, रासविलासी॥
मोहन, माखन-चोर, मदन, मुकुन्द, मुरारी।
केशव, कृष्ण, कृपालु, कहा कर कमला प्यारी॥

(१३०)

मन में हरि का ध्यान, प्रीति प्रतिमा–पूजन में।
रसना रहै निमग्न, कृष्ण के कर्म कथन में॥
अवतारों पर रूप, भेद का भार न धरना।
सब को मान समान, भक्ति से दर्शन करना॥

(१३१)

विश्वनाथ, भगवान, देवगुरु, गौरव-धारी।
साधु, विप्र, बुध, भूप, पुरोहित, पञ्च, पुजारी॥
पुरजन, नातेदार, कुलज, कौटुम्बिक, प्यारे।
सब को पूज प्रसन्न, रहेंगे तुझ पर सारे॥

(१३२)

मीठे वचन सुनाय, धनी पूजा कर धन से।
भक्तिभाव दरसाय, रिझाना तन से, मन से॥
गुरु-सेवा-रस पान, किया करना यों सुख से।
बिटिया! रहना दूर, वल्लभाचार विमुख से॥

(१३३)

जो पति का मन पाय, मान गुरु का करती है।
वह सधवा सानन्द, शोक-सागर तरती है॥
विधवा तो हरि-नाम, रटे ध्रुव धर्म यही है।
गुरु-सेवा भरपूर, करे शुभ-कर्म यही है॥

(१३४)

रोक रोक व्रत-वेग, जाति-गौरव-प्रवाह का।
पीट पीट कर ढोल, बाल-विधवा-विवाह का॥
यों अपयश को मान, रहे जो सुयश कमाना।
अनघे! उन के कर्म, कथन पै जी न जमाना॥

(१३५)

विधवा होकर पान, चबाना, नयन—नचाना।
वेष बनाकर ठौर, ठौर हुरदङ्ग मचाना॥
इतने तक तो पुण्य, प्रतिष्ठा कम घटती है।
पर करते ही ब्याह, नाक जड़ से कटती है॥

(१३६)

जो रँडुआ भर दाम, नई वरनी वरता है।
वह बुड्ढा अनपत्य, छोड़ वैभव मरता है॥
क्या उस की वह राँड, पवित्र नहीं रहती है।
करलूँ पुनर्विवाह, किसी से कब कहती है॥

(१३७)

जो बिन धन, सन्तान, तरुण विधवा होती है।
वह दुखिया आजन्म, मृतक पति को रोती है॥
कात कात कर सूत, पेट अपना भरती है।
पर न दुबारा ब्याह, धर्म खोकर करती है॥

(१३८)

विधवा—दल को जार, बिजार ठगा करते हैं।
बहुधा गर्भस्वरूप,-कलङ्क लगा करते हैं॥
पर वे अभया श्राव,-पात से कब डरती हैं।
करती हैं सुखभोग, न कोई वर वरती हैं॥

(१३६)

जो रँडिया निरुपाय, न पेट गिरा सकती है।
मूढ़गर्भ बतलाय, महोदर को ढकती है॥
छोड़ गेह, पुर दूर, जाय बालक जनती है।
पर वह धोखा खाय, न अन्य-बधू बनती है॥

(१४०)

सब का सर्व सुधार, सदैव किया करते हैं।
विधवा-दल को प्रेम,-प्रसाद दिया करते हैं॥
इन अगुत्रों के साथ, सुयश का स्रोत बहाना।
छोड़ जाति-कुल-धर्म,कर्म कुलटा न कहाना॥

(१४१)

यों कुल, जाति महत्त्व, बड़े हित से समझाया।
पर मा का वह पोच, प्रलाप न मुझ को भाया॥
क्या करती प्रतिवाद, निरा उलटा फल होता।
मङ्गल के प्रतिकूल, असीम अमङ्गल होता॥

(१४२)

इतना कहा अवश्य, अरी! अब तो चुप होजा।
तनक रही है रात, कृपा कर सुख से सोजा॥
सुन कर मेरी बात, कहा कटु शब्द न कोई।
जननी अपने साथ, सुलाकर मुझ को सोई॥

(१४३)

बीत गई वह रात, उठीं सो कर हम दोनों ।
करने लगीं विचार, शुद्ध हो कर हम दोनों ॥
जननी ने कुछ देर, कही फिर धर्म-कहानी ।
सुन कर मैं ने जन्म, सफल करने की ठानी ॥

(१४४)

ऊपर से जिस भूल, भरे मत को अपनाया ।
प्रतिभा का यह शत्रु, न भीतर घुसने पाया ॥
समझाया चुपचाप, अरे मन ! रङ्ग-रँगीले ।
कुछ दिन धर्माभास, रूप मृग-जल भी पीले ॥

(१४५)

ठगियों को धन छोड़, न यौवन ठगने दूँगी ।
जीवन पै व्यभिचार,-कलङ्क न लगने दूँगी ॥
यों प्रचण्ड प्रण रोप, रोक तन-मन की बाधा ।
पूज मदन-गोपाल, लोकवल्लभ व्रत साधा ॥

(१४६)

उठती पिछली रात, मनोहर गाय*प्रभाती ।
मज्जन कर गोविन्द, भजन का तार लगाती ॥

---

*(गर्भरण्डा की प्रभाती)
वह ऊर्वी रवि की लालिमा—
जगादे इस मैया ॥ टेक ॥

हरि–मन्दिर में जाय, ध्यान*माधव का धरती।
बगलों के सिर तोड़, दम्भ के कान कतरती॥

(१४७)

प्रतिमा का जड़भाव, न जी के भीतर भरती।
ऊपर का अनुराग, अड़ा कर पूजा करती॥

पीली फटते ही उठ बैठे, धोरी धेनुवरैया।
अबलों देख, पड़ा सोता है, तेरा लाल कन्हैया॥
व० ऊ० र० ला० ज० हृ० भैया॥
सारे बछड़े खोल चुका है, मूसल–धारी भैया।
जिसने तेरी परदादी सी, ब्याही बड़ी लुगैया॥
व० ऊ० र० ला० ज० हृ० भैया॥
जागे ग्वाल घुसे खिरकों में, काढ़ें खोल पवैया।
हाँक लेचले बसांवट को, रही न कोई गैया॥
व० ऊ० र० ला० ज० हृ० भैया॥
माखन–चोर दही लूटेगा, नाचेगा नचवैया।
विघ्न हरे शङ्कर का बेटा, चूहे पै चढ़वैया॥
व० ऊ० र० ला० ज० हृ० भैया॥

* (गर्भरण्डा का ध्यान)

कस्तूरी तिलकं ललाटपटले, वक्षःस्थले कौस्तुभं
नासाग्रे वरमौक्तिकं करतले, वेणु करे कङ्कणम्।
सर्वाङ्गे हरिचन्दनं सुललितं, कण्ठे च मुक्तावली
गोपस्त्रीपरिवेष्टितो विजयते, गोपालचूडामणिः॥

—गोपालसहस्रनाम

यों रच ढोंग ढपान, रीझ का रस टपकाती ।
प्रभु–पादोदक पान, किये बिन अन्न न खाती॥

(१४८)

ठाकुर को भरपूर, भक्ति अपनी दरसाती ।
ठकुरानी पर पुष्ट, प्रेम का रस बरसाती ॥
उद्यापन, उपवास, दान, जप करना सीखी ।
भवसागर से पार, उतरना–तरना सीखी ॥

(१४६)

पढ़ गोपालसहस्र,-नाम गौरव का गुटका ।
करती मङ्गल-पाठ, मान देकर सम्पुट* का ॥
सुनती व्यास प्रणीत, पुराण महा सुखपाती ।
मन में रास-विलास, भागवत के भरलाती ॥

(१५०)

जितने सन्त, महन्त, अतिथि, अभ्यागत आते ।
गोपनीय ध्रुव-धर्म, सुकर्म सुधार बताते ॥
कर उन का आतिथ्य, यथोचित आदर देती ।
छोड़ मान अपमान, महाफल सब से लेती ॥

---

* " सम्पुट पद्य "

बालक्रीडासमासक्तो, नवनीतस्य तस्करः ।
गोपालकामिनीजारश्चौरजारशिखामणिः ॥

—गोपालसहस्रनाम

(१५१)

जब कोई व्रत-पर्व, दिवस उत्सव का आता।
तब मेरा मन मुग्ध, अमित आनन्द मनाता॥
जगमोहन में बैठ, राग-रस-रङ्ग बहाती।
बीणा मधुर बजाय, भारती बन कर गाती*॥

(१५२)

सुन कर बीणा, गान, रसिक मन्दिर में आते।
ठाकुर की सुधि भूल, अनुग मेरे बन जाते॥

(गर्भरण्डा के गीतों की बानगी)

* १-बाँसुरी पर गीत।

बरसाय सुधा-रस कानन मे-
बरे बाँसुरिया विष बोइबो जाने॥ टेक॥

सुन वीर बिसासिन बाज रही, अपनी सुधि मोहि न आज रही।
न रही कुल-कानि न लाज रही, उपजाय उमंग बिगोइबो जाने॥
ब० सु० का० ब० बां० बि० बो० जाने॥

तन को झकझोर झुलावति है, मन को चहु ओर डुलावति है।
ब्रजराज के तीर बुलावति है, चुपचाप सहेट मे सोइबो जाने॥
ब० सु० का० ब० बां० बि० बो० जाने॥

हम को रसरीति सिखाय चुकी, कुटिला करतूत दिखाय चुकी।
ठगनीन में नाम लिखाय चुकी, गुरु लोगन मे पति खोइबो जाने॥
ब० सु० का० ब० बां० बि० बो० जाने॥

ब्रज मे व्रत कौन सती करती, धन धीर न शङ्कर की धरती।
अनघा मुरलीधर पै मरती, श्रुतिधारिनि धर्म डुबोइबो जाने॥
ब० सु० का० ब० बां० बि० बो० जाने॥

युवक सुनाते रीझ, रीझ इस भाँति बड़ाई ।
कमला से कमलेश, न कम है कमला बाई ॥

(१५३)

समझाती रसिकेश, राधिका के करतब को ।
करती मुक्त, पिलाय, ज्ञान–गीतामृत सबको ॥
चेतन के गुण गाय, अचेतन के पग चाटे ।
यों कुछ काल बिताय, ब्रह्मकण्टक दिन काटे ॥

२–दानवीरता पर गीत ।

मेरा देने का टूटे न तार,
देती दिलाती रहूँ ॥ टेक ॥

प्यारे की पूजा में पूँजी लगाऊँ, प्यारी पै प्राणों को वार—
घंटा हिलाती रहूँ ।
मे० दे० टू० दे० दिलाती रहूँ ॥

वीणा की वाणी सुधा सी बहादूँ, गाने में गीता का सार—
सारा मिलाती रहूँ ।
मे० दे० टू० दे० दिलाती रहूँ ॥

सन्तों की सेवा में घाटा न आवे, पूरी कचौड़ी सुहार—
पेड़े खिलाती रहूँ ।
मे० दे० टू० दे० दिलाती रहूँ ॥

साथी रहें शंकरानन्द दाता, पञ्चों को आंसू की धार—
रो रो पिलाती रहूँ ।
मे० दे० टू० दे० दिलाती रहूँ ॥

(१५४)

गायक मुझ को मान, गये गरिमा गायन की।
समझे साधु, सुजान, सुमति वैशम्पायन की॥
रसियों ने करतूत, बतादी चतुरानन की।
कहते थे कुल-पक्ष, नाक है विधवापन की॥

(१५५)

मेरे परम पवित्र, चरित की चरचा फैली।
कर न सका अन्धेर, सुयश की चादर मैली॥
जननी का उपदेश, मान हरि के गुण गाये।
पण्डित किये प्रसन्न, सर्व खल-खर्व रिझाये॥

(१५६)

हुआ शिशिर का अन्त, न जाड़ा रहा न गरमी।
करे न शीत कठोर, उष्णता भरे न नरमी॥

३—गोपियों की विरह वेदना पर

(कवित्त)

मोर बैठो मन लिखे केलमा वचन कही,
तानेरी त्रिभंगी-तन नबन हमारी पै।
कूबरी ने कूबर की लटक लखाय पेठ,
अपनी लपेटी छल छलबल धारी पै॥
सूखगई शकर कृपा की अजबेली बेलि,
पालो पड़ो केलि की फबीली फुलवारी पै।
सूवे न मिलेगो वीर वाही कुटिला की भाँति,
बांकी बन बन चला बाँकुरे विहारी पै॥

कर दोनों गुण मेल, शरण समता की आये।
सुभग अनुष्णाशीत, प्रकृति ने दृश्य दिखाये॥

(१५७)

रवि किरणों से मेल, पलल* करते हैं जैसा।
पत्र, पुष्प, फल आदि, पकड़ते हैं रँग वैसा॥
मिश्रित रङ्ग अनेक, मिले सतरङ्गी निधि से।
मदनदेव के बाण, बने नैसर्गिक विधि से॥

(१५८)

उमगा वीर वसन्त†, किये पुष्पित वन सारे।
कोइल, कोकिल कूक, उठे मधुकर गुञ्जारे॥
सुखदस्पर्श सुवास, बसादी मन्द पवन में।
रतिवल्लभ की ज्योति, जगी मेरे तन—मन में॥

(१५९)

यौवन—वन में बीज, उगा रस-रीति-लता का।
टूट गया व्रत-वेणु, गिरी हरि-भक्ति पताका॥

---

* पलल=अङ्कोत्पादक महासूक्ष्म द्रव्य—अणु विशेष।

† वसन्त-विकाश।

(दोहा)—रहे न साथी शीत के, शिशिर और हेमन्त।
मित्र मार शृङ्गार का, उमगा वीर वसन्त॥

उचित चाह की बेलि, प्रेम-तरु पै चढ़ फूली ।
पूजन, पाठ बिसार, भजन भोजन मैं भूली ॥

(१६०)

हा ! उमङ्ग-मद पान, लगा करने मन मेरा ।
मतवाला अवधूत, बना बरजा बहुतेरा ॥
छूट गये सब काम, काज घर के, बाहर के ।
देख वसन्त-विकास, पद्य*पढ़ती शङ्कर के ॥

(१६१)

मैं अति व्यग्र उदास, अधीर निराश निहारी ।
करने लगी विचार, कुढ़ी कातर महतारी ॥
मुझ को पास बुलाय, कृपा करुणा कर बोली ।
कमला चल के देख, अलौकिक व्रज की होली ॥

---

* द्रुतविलम्बित

(१)

नवलपत्र प्रसून खिले खरे ।
मन हरे तरु-पुञ्ज हरे हरे ॥
सुमन मे न सुगन्धि समायगी ।
पवन मे वन में भरजायगी ॥

(२)

मधुप गुञ्जत पङ्कज-पुञ्ज में ।
सुखद कोकिल कुञ्जत कुञ्ज मे ॥
निधि मिली मधु मित्र उदार की ।
गठगई ठगई ठग-मार की ॥

(१६२)

मैं ने अभिरुचिरूप, चित्त की चाह उगलदी।
मदनदत्त * के साथ, मुझे लेकर मा चलदी॥
पहुँची मथुरा रेल, लाँघ यमुना के पुल को।
ताँगे पर चढ़ कूच, तुरन्त किया गोकुल को॥

(१६३)

मग में वन, उद्यान, विहार, निकुञ्ज निहारे।
पत्र नवीन प्रसून, पीत पाटल अरुणारे॥
फूल फूल ऋतु-राज, बना वञ्चक बहुरङ्गी।
माना सहित प्रमाण †, मनोभव का अति सङ्गी॥

---

* मदनदत्त=गर्भरण्डा की माता का वैतनिक-मित्र।

† गर्भरण्डा का प्रमाणभूत—

कवित्त।

शङ्कर फबीले फूल फूले हैं कि कोमलता,
काल ने कठिनता के जाल में फँसाई है।
ठौर ठौर सेमर अँगारे बरसावत हैं,
आग उठ किंशुक समूह में समाई है॥
सूखगयो सारे विरहीन को रुधिर सोई,
लालिमा नवीन रुरु, पातन पै छाई है।
देख दुखदाई पञ्चबाण की पठाई माई,
व्याधि विरवान की वसन्तऋतु आई है॥

(१६४)

नाच नाच कर छैल, पथिक रसिया* गाते थे।
बहुधा मुझ को नारि, मदन की बतलाते थे॥
अटका एक उतार, टोंक जननी पर छोड़ी।
बोला कर कुछ दान, जिये यह सारस-जोड़ी॥

(१६५)

काट सका दिन काट, जिसे रथ† मारुत-चाली।
छकड़े ने वह गैल, घड़ी भर में चल डाली॥

---

*गर्भरण्डा के मार्ग में छैल-पथिक जो अश्लील रसिया गाते थे उन में से एक अच्छा सा छाँट कर यहां निदर्शन रूप से लिखा जाता है —

(१)

ठग बनगया २ भगत बुढापे मे ॥ टेक ॥
छोडा डकैतो के डेरो मे जाना, झाके न वीरो के टापे मे।
ठग बनगया २ भगत बुढापे मे ॥
बैठा ठिकाने पै देवो को पूजे, पूँजी लगाई पुजापे मे।
ठग बनगया २ भगत बुढापे मे ॥
बीती जवानी की मैली पिछोरी, धोने को आया है आपे मे।
ठग बनगया २ भगत बुढापे मे ॥
खोजायगा शङ्करादर्श प्रेमी जो पै छुपेगा न छापे मे।
ठग बनगया २ भगत बुढापे मे ॥

† रथेन वायुवेगेन-जगाम गोकुलंप्रति।
श्री भा. स्कं. १०

अक्रूर जो क्रूर कंस के कहने से वायु-वेग-गामी रथ पर चढ कर सूर्य्योदय पर चले और साँझ को मथुरा से गोकुल पहुचे वही ढाई कोस का मार्ग गर्भरण्डा के तांगे ने केवल घड़ी भर मे चल डाला !

रवितनया में न्हाय, किया गुरुकुल में डेरा।
निरखे गोकुल-नाथ, टिका अस्थिर मन मेरा॥

(१६६)

मन्दिर में रसराज, वसन्त विराज रहे थे।
बाजे विविध मनोज, विजय के बाज रहे थे॥
पुष्ट प्रमाण प्रयुक्त, पाटिया* लटक रहा था।
धन्य तदङ्कित पद्य, सभ्यता सटक रहा था॥

(१६७)

पहुँचे भावुक भक्त, प्रबल प्रभुता के चेरे।
सपरिवार सस्त्रीक, शिष्य, सेवक बहुतेरे॥
आपस में मिल भेंट, जगद्गुरु के गुण गाये।
गोकुल में कर वास, दिवस दो तीन बिताये॥

(१६८)

आया दिन सुख-मूल, गूढ़ गौरव गरबीला।
उछल पड़ी गोपाल, लाल कृत लौकिक लीला॥

---

*(होलिकोत्सव की सूचना)

श्रीकृष्णः शरणं मम।

(शशिधरवृत्त)

चले चरचा चित चोरी की। चढ़े रस-रंगत होरी की॥
उते हरि-भक्ति तिहारी पै, इते व्रजराज विहारी पै॥

गगन-घोषणा रूप, सुनी सबने यह बोली।
ललनागण से आज, अटक उलझेगी होली॥
(१६९)
कर सुन्दर शृङ्गार, चलीं चुपचाप लुगाईं।
वटुओं में भर भेंट, मुदित मन्दिर में आईं॥
अटकी काल कुचाल, कुसङ्गति ने मति फेरी।
मुझको लेकर साथ, सधन पहुँची मा मेरी॥
(१७०)
साधन सर्व-सुधार, सजीले सदुपदेश के।
दर्शन को झट खोल, दिये पट गोकुलेश के॥
श्रीगुरुदेव दयालु, महा छवि धार पधारे।
सब ने धन से पूज, देह, जीवन, मन वारे॥
(१७१)
अबला * एक अधेड़, अचानक आकर बोली।
हिलमिल खेलो फाग, उठो अब सुनलो होली†॥

---

* अबला एक अधेड = यह अबला (सबला) श्रीप्रभु की दूतीजी हैं, इन्हीं की कृपा से महिलामण्डल का उद्धार हुआ करता है।

† (श्रीमती दूतीजी की होली)

पग पजा यथाविधि होली,
उठो अब खुल खुल खेलो होली॥ टेक॥
प्रेमतुला पर आज तुम्हारी, ठसक जायगी तोली।
किस में कितनी भक्ति भरी है, कौन प्रकट हो पोली॥

लाल गुलाल उड़ाय, कीच केशर की छिड़की ।
सब को नाच नचाय, सुगति की खोली खिड़की ॥

(१७२)

फैल गया हुरदङ्ग, होलिका की हलचल में ।
फूल फूल कर फाग, फला महिलामण्डल में ॥
जननी भी तज लाज, बनी ब्रजमक्खो* सबकी ।
पर में पिण्ड छुड़ाय, जवनिका† में जा दबकी ॥

(१७३)

कूद पड़े गुरुदेव, चेलियों के शुभ दल में ।
सदुपदेश का सार, भरा फागुन के फल में ॥

उठो अब खुल खुल खेलो होली ॥
लमक लाज की फरिया फाड़ो, चीर सकुच की चोली ।
रोक टोक पर ठोकर मारो, हमको ठान ठठोली ॥
उठो अब खुल खुल खेलो होली ॥
लाल गुलाल अबीर मिलाओ, डालो भर भर झोली ।
झूल झूल वह रंग उलीचो, जिसमें केशर घोली ॥
उठो अब खुल खुल खेलो होली ॥
गोकुल में गोलोकगमन की, बोल रहे गुरु बोली ।
मायावाद जनक शङ्कर का, पोल कृपाकर खोली ॥
उठो अब खुल खुल खेलो होली ॥

* ब्रजमक्खो=विदूषिका । † जवनिका=परदा-आड़ ।

अड़के अङ्ग उघार, पुष्ट प्रण के पट खोले ।
सब के जन्म सुधार, कृपाकर मुझ पै बोले ॥

(१७४)

जिसने केवल मंत्र, युक्त उपदेश लिया है ।
अबतक योगानन्द, महामृत को न पिया है ॥
वह रँग-लीला छोड़; कहां छुपगई छबीली ।
सुन प्रभु से संकेत, चली कुटनी नचकीली ॥

(१७५)

मुझ को दबकी देख, अड़ीली आकर अटकी ।
मुख पै मार गुलाल, अछूती चादर झटकी ॥
घेर घुमाय घसीट, धुड़क लाई दङ्गल में ।
फिर यों हुआ प्रवेश, अमङ्गल का मङ्गल में ॥

(१७६)

मेरा बदन विलोक, घटी दर दारागण की ।
करता है शशि मन्द, यथा छवि तारागण की ॥
वृषवल्लभ * गोस्वामि, बने कामुक दुर्मति से ।
मनुज मोहिनी मान, मुझे दौड़े पशुपति † से ॥

---

* वृषवल्लभ=धर्मप्रिय-मदनप्रिय । † पशुपति=महादेव ।

(१७७)

परखा पाप प्रचण्ड, प्रमादी पामरपन में ।
उपजा उग्र अदम्य, रोष मेरे तन, मन में ॥
लमकी लटकी देख, लाय तलवार निकाली ।
गरजी छन्द कृपाण*, सुनाकर सुमरी काली ॥

(१७८)

वीर, भयानक, रुद्र, रूप समझो रणचण्डी ।
सुन मेरी किलकार, गिरी गचपै हुरसण्डी ॥
मूत रहे, न पुरीष, रुका, पटकी पिचकारी ।
रस बीभत्स बहाय, दुरे प्रभु प्रेम-पुजारी ॥

(१७९)

भङ्ग हुआ रस-रङ्ग, भयातुर हुल्लड़ भागा ।
निरख नर्तनागार, छुपा रसराज अभागा ॥
हौट गया हुरदङ्ग, भुजा मेरी फिर फड़की ।
भड़की उर में आग, क्रोध की तड़िता तड़की ॥

---

* (गर्भरण्डाका कालिकास्तव)

(कृपाण-दण्डक-मुक्तक)

अरी चण्डी ! चेत चेत, सारी शक्तियों समेत,
मदमाते भूत-प्रेत, करें तेरे गुणगान ।
कर कोप किलकार, आँख तीसरी उघार,
ताकतेही तलवार, भीरु भागें भयमान ॥
गिरें वैरियों के मुण्ड, फिरें रुण्ड बिन मुण्ड,
भरें शोणित से कुण्ड, मचे घोरघमसान ।
मद पीले गटागट्ट, गले काट कटाकट्ट,
मरें पापी पटापट्ट, हँसे रुद्र भगवान ॥

(१८०)

बोली रसिक सुजान, फाग अब आकर खेलो।
सर्व समर्पण-रूप, आँस इस असि की झेलो॥
निकलो खोल कपाट, निरखलो नारि नवेली!
फिर न मिलेगी और, जन्म भर मुझ सी चेली!!

(१८१)

गुप्त रहे गुरुदेव, न भीतर से कुछ बोले।
भूलगये रस-रीति, अनीति किवाड़ न खोले॥
कुटनी भी भयभीत, ससकती रही न बोली।
अस्त हुई इस भाँति, मस्त गुरुकुल की होली॥

(१८२)

ब्रह्मचर्य-व्रत-शील, कलेवर ने जय पाई।
धार कृपाण निशङ्क, निडर डेरे पर आई॥
मन्दिर के दरबान, रहे बैठे कर मलते।
हिजड़ों के हथियार, भला मुझ पै क्या चलते॥

(१८३)

मुझ को देख सरोष, न मुख जननी ने खोला।
मदन * कलेजा थाम, गिड़गिड़ा कर यों बोला॥

---

* मदन = मदनदत्त-गर्भरण्डा की मा का वैतनिक प्रेमी भय-भीत होकर क्या कहनेलगा! वाहरे कलियुग!!

हे भगिनी ! रिस रोक, मुझे समझो निज भ्राता ।
हम तुम दोनों क्यों न, कहें फिर इन को माता ॥
(१८४)
मैं ने सुन यह बात, कहा ऐसा मत बल दो ।
उठदो बिना विलम्ब, यहाँ से घर को चल दो ॥
मैं, मा, मदन तुरन्त, चले फिर यमुना न्हाये ।
पहुँचे थे जिस भाँति, उसी विधि से घर आये ॥
(१८५)
घर में किया प्रवेश, मिले बिछुड़े पुरवासी ।
हुआ पन्थश्रम दूर, रही कुछ भी न उदासी ॥
साहस-दर्प दिखाय, मन्दमत का मुख तोड़ा ।
पर मैं ने शुभ सत्य, सनातनधर्म न छोड़ा ॥
(१८६)
दिन दो तीन बिताय, जटिल जड़ता की घेरी ।
बोली वचन विनीत, मधुर महतारी मेरी ॥
बेटी, परम पवित्र, तुझे अब जान चुकी हूँ ।
शुभ-लक्षण-सम्पन्न, प्रकृति पहँचान चुकी हूँ ॥
(१८७)
तुझ सी विधवा और, न होगी भारत भर में ।
उपजा तनया रूप, रत्न मेरे सदुदर में ॥

कर सद्धर्म-प्रकाश, सुयश की ज्योति जगाना ।
पर तू धार सुहाग, दाग़ कुल को न लगाना ॥

(१८८)

सुन मा का बकवाद, बढ़ी रिस मेरे मन में ।
उगला अपना रोष, कटीले कूट-कथन में ॥
जाँच लिये जड़, जाल, साँग सब निकले झूँठे ।
अब तू मुझ को और, न दे उपदेश अनूठे ॥

(१८९)

जिस की मार सहार*, कढ़ी मैं राँड उदर से ।
जिसको आदर मान, मिला अन्धेरनगर से ॥
लोग जिसे पधराय, धूलि करते हैं धन की ।
क्या फिर पकड़ूँ पूँछ, उसी प्रतिमा-पूजन की ॥

(१९०)

झाबर, झील, तड़ाग, नदी, नद, सागर सारे ।
पादप, धातु, पहाड़, भानु, तड़िता, शशि, तारे ॥
पशु, पक्षी, झष, व्याल, मृतक पूजे पुजवाये ।
पर तेरे सब ढोंग, महाधम निष्फल पाये ॥

---

* जिस की मार सहार=जिस प्रतिमा-पूजन की मार खाकर मैं (गर्भरण्डा) मा के पेट से राँड होकर निकली (प्रतिमारूप गुड़िया के पूजनमात्र से राँड कीगई) उसी काम को अब नहीं करना चाहती ।

(१६१)

जो सब का करतार, अजन्मा, अजरामर है ।
अखिलाधार, अखण्ड, विश्वपति, विश्वम्भर है ॥
मैं उस मङ्गलमूल, जनक से मेल करूँगी ।
अब न खिलौने पूज, कपट का खेल करूँगी ॥

(१६२)

जिस ने रावण मार, सुयश का स्रोत बहाया ।
राम लोकअभिराम, धर्म–अवतार कहाया ॥
उस नरेन्द्र का साँग, भीरु भुक्खड़ भरते हैं ।
ऐसे अनुचित काम, मुझे व्याकुल करते हैं ॥

(१६३)

जिस ने किया सुधार, सुनाकर अपनी गीता ।
भूतल-भार उतार, दुष्ट कौरव-दल जीता ॥
भारत का सिर-मौर, जिसे मुनि मान रहे हैं ।
नर्त्तक, तस्कर, जार, उसे जड़ जान रहे हैं ॥

(१६४)

जितने पाप कुकर्म, आप कपटी करते हैं ।
उन को अन्ध प्रसिद्ध, देव-दल में भरते हैं ॥
जीवन के फल चार, बाँटते हैं ठग सब को ।
पलट सकेगा कौन, मूढ़ मेरे अनुभव को ॥

(१६५)

लूट रहे रच दम्भ, पुरोहित, पण्डित, पण्डे।
देख लिये छल–छिद्र, भरे सब के हथखण्डे॥
सिद्ध बधिक दैवज्ञ, बने मतिमन्द भरारे।
परखे पामर पञ्च, नीच नटखट हत्यारे॥

(१६६)

रिसकर कण्ठी तोड़, जिसे अब छोड़ चुकी हूँ।
जिस के मत का रिक्त, आम घट फोड़ चुकी हूँ॥
उस अविवेकाधार, जार को गुरु न कहूँगी।
खल–दल के अन्धेर, अधम से दूर रहूँगी॥

(१६७)

जिस में भूल, प्रमाद, कपट का लेश न होगा।
जिस का ब्रह्म-विवेक,-हीन उपदेश न होगा॥
जो सब के मन, कर्म, वचन को शुद्ध करेगा।
भवसागर से पार, मुझे वह बुद्ध करेगा॥

(१६८)

मैं अब अपना व्याह, करूँ अथवा न करूँगी।
पर, तेरे अपवाद, अनर्गल से न डरूँगी॥
धूलि उड़े उस ऊँच, जाति के चाल-चलन की।
जिस ने करदी हाय, अधोगति हिन्दूपन की॥

(१९९)

विधवा–दल से वैर, लेरहे हैं ग्वल कब का।
हम दुखियों का शाप, नाश करदेगा सब का॥
कब तक अत्याचार, निरङ्कुश नीच करेंगे।
आ पहुँचा अब काल, प्रचण्ड पिशाच मरेंगे॥

(२००)

कमला! तुझे न प्रेम, जाति-कुल-पक्षों पर है।
नेक न भारत–धर्म, महामण्डल का डर है॥
यों सुनाय सिर पीट, निरख मुझको मा रोई।
मैं चलदी चुपचाप, चढ़ी छत पर जा सोई॥

(२०१)

पौराणिक भ्रमजाल, पाल पर किया परेखा।
तुरत आगई नींद, विलक्षण सपना देखा॥
तर्कहीन हठवाद, महातम का पूषण है।
सुन लो स्वप्न-प्रसङ्ग, असम्भव का भूषण है॥

(२०२)

जाग्रत का प्रतिबिम्ब, स्वप्न उमगा यों मन में।
मुनिवर विश्वामित्र, मिले फिरते कानन में॥
बोले विरति विसार, मेनका कर मनभाई।
जनले अबकी बार, भरत जननी का भाई॥

(२०३)

सुन दाहक दुर्वाद, न अपना धर्म बिगाड़ा ।
बिगड़ी मैं इस भाँति, मत्त मुनि का मद झाड़ा॥
कौशिकपन को त्याग, उग्र तप-तेज पसारा ।
परमहंस ब्रह्मर्षि, बने पर मार न मारा ॥

(२०४)

बाबा ! राति विपरीत, रीति पर ठोकर मारो ।
बाधक प्रेय विहाय, श्रेय साधक बल धारो॥
सुन मेरी फटकार, गाधिनन्दन सकुचाये ।
उद्धत पथ से लौट, साधुपद्धति पर आये ॥

(२०५)

मूँद प्रचण्ड प्रमाद, ज्ञान गौरव दरसाया ।
मनसिज को धिक्कार, गिरा-रस यों बरसाया॥
बिटिया ! लुटा न आज, योगसाधन-धन मेरा ।
हुआ बड़ा अपराध, करूँ अब क्या हित तेरा ॥

(२०६)

समझी हित की बात, कहा उपकार कीजिये ।
दीनदयालु सदेह, मुझे सुरधाम दीजिये ॥
"एवमस्तु" शुभ शब्द, सुना मुनि से बिछुड़ी मैं ।
हुआ मनोरथ सिद्ध, गगन की ओर उड़ी मैं ॥

(२०७)

पहुँची ध्रुव के पास, मनोहर दृश्य निहारे ।
झपटे जान त्रिशंकु, पटकने को सुर सारे ॥
रोक सके न त्रिलोक, अङ्ग अति सुन्दर मेरे ।
मैं ने नयन नचाय, किये चितवन के चेरे ॥

(२०८)

उमगे मान सुरेश, मुझे वनिता गोतम की ।
समझ भारती, चाह, विधाता ने कब कम की ॥
जान जलन्धर-नारि, आँट अटकी श्रीधर की ।
निरख मोहिनी रूप, लाज सटकी शङ्कर की ॥

(२०९)

समझे पृथा दिनेश, यथारुचि प्रेम पसारा ।
रीझे रसिक मयङ्क, समझ गुरुदारा तारा ॥
ममता गर्भ-विहीन, बृहस्पति बुध ने जानी ।
देख देख छवि देख, छके सबके मनमानी ॥

(२१०)

आगे कर अमरेश, जीव, ब्रह्मा, हरि, हर को ।
बोले रसिक समस्त, अरी आ चल भीतर को ॥
फोड़ रहे इस भाँति, कान सुर नाक निवासी ।
मैं चुपचाप विचार, रही उर धार उदासी ॥

(२११)

डपटे ऊत अनेक, छोड़ छल की परिपाटी ।
बिदक गये गोस्वामि, नाथ गुरुकुल की काटी ॥
मुनि का दर्प दबोच, मनोभव-भूत उतारा ।
अटके निर्जर * आज, बनूँ किस किस की दारा ॥

(२१२)

करती थी करतूति, नरों की परख परेखा ।
सब रसिकों का सार, अलखलेखा दल देखा ॥
तक तेंतीस करोड़, रहे उपजा भय भारी ।
बचने की विधि एक, धर्मबल धार विचारी ॥

(२१३)

मन में धीरज बाँध, गाँठ गड़बड़ की खोली ।
सब को आदर, मान, दान देकर हँस बोली ॥
इतनी हल्ल पुकार, अकारण क्यों करते हो ।
छी ! छी ! ! अमर कहाय, वृथा मुझ पै मरते हो ॥

(२१४)

सुनकर बोले जीव †, हमें निर्जीव न कर तू ।
क्रम से प्रेम पसार, श्रीमती सबको वर तू ॥
मान रहा "रसराशि", तुझे सुर-मण्डल सारा ।
जीवन-नभ में जान, शुक्र का चमका तारा ॥

---

* देवता । † बृहस्पति ।

(२१५)

प्रकट ऊपरी प्रेम, मन्त्र सुरगुरु का माना।
फिर यों अपना इष्ट, कूट प्रण ठान बखाना॥
जो सब देव उदार, चार वर सादर देंगे।
तो मुझ पै अधिकार, कदाचित् कर भी लेंगे॥

(२१६)

मान गये गुरु बात, न समझे मेरे छल को।
अटल वरों की माँग, सुना दी सुर-मण्डल को॥
सुनकर बोले देव, न कर बेजोड़ बहाने।
दे हमको सुखदान, माँगले वर मनमाने॥

(२१७)

माँग, माँग वर माँग, बोल वरनी! वर देंगे।
वस न करेंगे आज, तुझे वस में कर लेंगे॥
जब जीवन-दातार, व्यग्र वृन्दारक होंगे*।
तब मैं ने वर चार, विवश होकर यों माँगे॥

(२१८)

"अपने अपने धाम, और अधिकार दिखादो"।
"जिससे रूप अनेक, धरूँ वह रीति सिखादो"॥
"बिछुड़े पति के साथ, मुझे गँठजोड़ मिलादो"।
"कर दोनों पर प्यार, सुधा भर पेट पिलादो"॥

---

* स्वीकार किया।

(२१९)

"दिये दिये वर चार, दिये" सब देव पुकारे।
अब तो आ चल देख, धाम अधिकार हमारे॥
धर मनमाने वेश, यथारुचि सुन्दर बीले*।
लेकर पति को सङ्ग, समोद सुधारस पीले॥

(२२०)

पाकर मैं वरदान, बँधी दैविक बन्धन में।
पहुँची सब के साथ, स्वर्ग के नन्दनवन में॥
हँसता हुआ प्रसन्न, मिला बिछुड़ा वर मेरा।
सुर-प्रसाद पीयूष, पानकर किया बसेरा॥

(२२१)

उमगा दम्पति-योग, घने सुरवर्ष बिताये।
बालक साठ सहस्र, सगर के से सुत जाये॥
वंश-वृक्ष उपजाय, बढ़ाकर फूल फली मैं।
पति को सन्तति सौंप, चलन की चाल चली मैं॥

(२२२)

अमरपुरी की ओर, भारती बनकर आई।
रहे देवगुरु साथ, ब्रह्मपुर लों पहुँचाई॥
मधु कैटभ दो रूप, धारकर पहुँची आगे।
धर मराल पर ज़ीन, चढ़े चतुरानन भागे॥

---

* ख़राब।

(२२३)

निकट रहा वैकुण्ठ, मानली सम्मति मति की।
बन प्रद्युम्न-कुमार, भड़क देखी मापति* की॥
पहुँची त्र्यम्बक† धाम, भूतगण गरजे सारे।
जनकसुता का वेश, धार पशुनाथ निहारे॥

(२२४)

दौड़ी बन हनुमान, भानु गूलर सा गपका।
राहु बनी विकराल, देखते ही विधु झपका॥
होकर काकभुशुण्ड, घुसी राघव के मुख में।
लोक अनेक विलोक, कल्प दश काटे सुख में॥

(२२५)

ठौर ठौर अविराम, रही फिरती न रुकी मैं।
छोड़ इन्द्र, यम—धाम, और सब देख चुकी मैं॥
कृष्णा‡ बनकर ठाठ, देख लूं शक्र ससुर के।
निरखूँगी नरकादि, अन्त को अन्तकपुर के॥

(२२६)

यों विचार कर देह, द्रौपदी की अपनाई।
इन्द्रसभा सुविशाल, निरख नीकी मनभाई॥
वासव ने भगभोग, रूप रसराशि रची थी।
दक्षिण ओर जयन्त, वाम दिश वाम शची थी॥

---

* विष्णु। † महादेव। ‡ द्रौपदी।

(२२७)

काकपक्ष धर धींग, पाकशासन* का लड़का।
अनुजवधूटी† जान, सकाना नेक न फड़का॥
छोड़ राग-रस-रङ्ग, भरे देवेन्द्र-सदन को।
चलदी दक्षिण ओर, देखने रविनन्दन‡ को॥

(२२८)

रक्त, वसा, मल, पीब, भरी निरखी वैतरणी।
मनुज मरों को धेनु, तारती थीं जिमि तरणी॥
यम का वाहन और, दूत सरितातट पाया।
होकर महिषारूढ़, चली मैं बनकर छाया§॥

(२२९)

पहुँचा अन्तक-धाम, सबल भैंसा द्रुतगामी।
मैंघुस गई समोद, निरख न्यायालय नामी॥
मन्दिर में यमराज, सशक्ति विराज रहे थे।
भीमकाय, विकराल, दूतगण गाज रहे थे॥

(२३०)

चित्रगुप्त कर जाँच, पाप सबके कहते थे।
अपराधी अभियुक्त, शोक, संकट सहते थे॥
देख मुझे तज काम, भानुसुत दण्ड विधाता।
झपटे किया प्रणाम, जानकर अपनी माता॥

---

* इन्द्र। † द्रौपदी (छोटे भाई की स्त्री)। ‡ यमराज।
§ यम की माता।

(२३१)

आसन दे कर जोड़, कहा किस कारण आई ।
मैं ने सुन इस भाँति, बात मन की बतलाई ॥
आज छोड़ सब काज, दूत इनपूत * तुम्हारे ।
लेकर मुझ को साथ, नरक दिखलादें सारे ॥

(२३२)

सुनकर मेरी बात, हँसे यमराज प्रतापी ।
कहा यथारुचि देख, नारकी अगणित पापी ॥
साथ किये निज दूत, मुझे नरकों पर लाये ।
रौरव, असिपत्रादि, भयानक दृश्य दिखाये ॥

(२३३)

दहक रही थी आग, दुष्ट हिंसक जलते थे ।
तप्त तलों पर जार, चोर, वञ्चक चलते थे ॥
मल, कचलोहू, राद, मूत्रमिश्रित सड़ते थे ।
जिनमें ऊत, उतार, पतित, पापी पड़ते थे ॥

(२३४)

मत्त मनोमुख मूढ़, सनातन—धर्म—विरोधी ।
कटुभाषी, कुलबोर, कलङ्कित, कपटी, क्रोधी ॥
अभिमानी, अनमेल, वेदनिन्दक, मतवाले ।
सहते थे सब थोक, नरक के कष्ट कसाले ॥

---

* यमराज ।

(२३५)

जटिल अविद्यादर्श, निरक्षर, मायिक, मुण्डे।
अन्ध अवैदिक शिष्य, मोहसागर गुरुगुण्डे ॥
साधु-वेश वटमार, प्रसिद्ध विरक्त त्रिदण्डी ।
भोग, योग, यमदण्ड, विकल थे कुल पाखण्डी॥

(२३६)

कामुक, क्रूर, कृतघ्न, कपटमुनि, मिथ्यावादी।
पिशुन, प्रपंची, पोच, प्रतारक, प्रेत, प्रमादी ॥
अशुभारम्भ, असभ्य, अशिक्षित, असदाचारी।
दुर्गति की झर झेल, रहे थे अधम अनारी ॥

(२३७)

निर्दय, करुणा-हीन, बधिक, बाधक, हत्यारे ।
अनृत-साक्ष्य के स्रोत, सुता, सुत बेचन हारे ॥
अति कुसीद* के ग्राह, बिसासी, घटबढ़ तोला।
सब पै पावक-पिण्ड, बरसते थे जिमि ओला॥

(२३८)

जो मदमत्त प्रजेश, कूट शासन करते थे ।
घोर अनीति पसार, प्रजा का धन हरते थे ॥
उनको यम के दूत, कटाकट काट रहे थे ।
शोणित श्वान, शृगाल, यथारुचि चाट रहे थे ॥

---

* सूद ।

(२३९)

ठग, चिकित्सकाभास, निरंकुश चरने वाले।
दुखियों को फुसलाय, प्राण, धन हरने वाले॥
ऐसे उजबक झाड़, कुगति की झेल रहे थे।
पिटते थे चुपचाप, जान पर खेल रहे थे॥

(२४०)

जो खल घूँस पचाय, पले थे मदिरा, पल* से।
वे कर पान अपेय, पेट भरते थे मल से॥
दाम जिन्हें अभियोग, अलीक दिया करते थे।
घेर उन्हें यमदूत, मूत मुख में भरते थे॥

(२४१)

जो कुल-कण्टक पेट, परामिष से भरते थे।
नोच नोच कर गीध, उन्हें घायल करते थे॥
जो जड़ मादक द्रव्य, बिना व्याकुल रहते थे।
वे जगदुन्नति-शत्रु, तीव्र ताड़न सहते थे॥

(२४२)

जो जड़धी अपमान, ब्रह्मकुल का करते थे।
खल-मण्डल के पोप, विप्रतनया वरते थे॥
शुद्ध सुहृद को दान, सुनीति न दे सकते थे।
छी! छी!! चिरकन चाट, मैल-मल वे भकते थे॥

---

* मांस ।

(२४३)

जो न हंसगुणशील, समालोचक बनते थे।
धार कुपक्ष-कुदाल, खानि छल की खनते थे॥
वे कलुषित लिक्खाड़, पकड़ कीचड़ में डाले।
भिनक रहे थे अङ्ग, वदन थे सबके काले॥

(२४४)

अगुआ बन जो दुष्ट, देश भर में बकते थे।
पिछलगुओं की छाक, छीन छल से छकते थे॥
वे जग-वञ्चक धर्म, लिङ्गधर लीडर सारे।
करते शोणित-पान, गटकते गन्द निहारे॥

(२४५)

जिन से बालक वेद, दाम देकर पढ़ते थे।
जिनके कुल में न्याय, नीति-निन्दक बढ़ते थे॥
जिनके थोक कुदान, सटकते थे लड़ते थे।
उन ठगियों पै बाँस, बेंत, चाबुक पड़ते थे॥

(२४६)

जखई, मियाँ-मदार, भूत, जिन पूजन हारे।
पिटते थे अनरीति, निरत नारी-नर सारे॥
गणिका, कुलटायूथ, अधीर पुकार रहे थे।
गरम लोह के जार, बिजार पजार रहे थे॥

(२४७)

विधवा-दल के शत्रु, पुरोहित, पञ्च, पुजारी।
गर्भ गिराय गिराय, बने यश के अधिकारी॥
बिलखें दुखिया राँड, दुबारा ब्याह न रचते।
ऐसे खल किस भाँति, नरक–बाधा से बचते॥

(२४८)

करता था न विवाह, हाय! जो विधवा-दल का।
दुर्गति का अतिसार, दृश्य था उस मण्डल का॥
जारज अर्भक मार, माल जो ठग ठगते थे।
उनके मुख में स्यार, श्वान, शूकर हगते थे॥

(२४९)

उलटे पटकी तोंद, बटुकजी भूल रहे थे।
सामुद्रिक उपदेश, उगलना भूल रहे थे॥
कहते थे यमदूत, मार मत खा अब साले!
ज़ाल बना कर, राँड, जनाकर माल कमाले!!

(२५०)

घोर घृणित, अश्लील, कुदृश्य न तकती थी मैं।
फेर फेर मुख आँख, झपाय झिझकती थी मैं॥
नरकों की इस भाँति, देखकर मार पिटाई।
लौटी धर निज रूप, दिवौकस-दल में आई॥

(२५१)

स्वर्ग, विलास विलोक, घिनोने नरक निहारे ।
घूम चुकी सब ठौर, कपट-कौतुक विस्तारे ॥
अटकी अन्तिम आँट, विबुध रसिकों ने घेरी ।
सूझा कुछ न उपाय, हुई कुंठित मति मेरी ॥

(२५२)

मेरा चरित विचित्र, ज्ञानबल से सब जाना ।
बोले अमर उदार, काल मङ्गलकर माना ॥
जो वर टेक टिकाय, लिये उनका फल भोगा ।
आ! अब से अधिकार, हमारा तुझ पर होगा ॥

(२५३)

वामनजी महाराज, बड़प्पन के चखतारे ।
विहँसे लघुता लाद, वचन बढ़िया उच्चारे ॥
पहले चंचु-प्रवेश, करें गुरुदेव हमारे ।
पीछे सुख-रस पेय, पियेंगे हम सुर सारे ॥

(२५४)

बलि वञ्चक की बात, न गिरिजासुत को भाई ।
तोंद फुलाकर कान, डुलाकर नाक नचाई ॥
चढ़ चूहे पर खोल, विकटमुख यों चिंघारे ।
कर सकता है कौन, दूर अधिकार हमारे ॥

(२५५)

बरनी वर मा–बाप, बने पूजन कर मेरा ।
निज गौरव का हाथ, न मैंने किस पर फेरा ॥
समझे प्रथमाराध्य, मुझे सब शिष्ट पुजारी ।
मैं इसका अब क्यों न, बनूं पहला अधिकारी ॥

(२५६)

गणनायक का नाद, कमठ को नेक न भाया ।
खींच काढ़ कर दिव्य, सुयश अपना यों गाया ॥
मैं ने कठिन कुडौल, पीठ पर मन्दर धारा ।
सिन्धु–मथन की बार, किया उपकार तुम्हारा ॥

(२५७)

बिन मेरे तुम लोग, मधुर पीयूष न पीते ।
कहिये तो किस भाँति, अमरता पाकर जीते ॥
बिन मेरी शुभ-शक्ति, न अपनाते हरिमा को ।
फिर भी पहली पोत, न लूं मैं इस गरिमा को ॥

(२५८)

कब कृतज्ञता त्याग, अयश को आदर देगा ।
मुझ से पहले कौन, इसे अपनी कर लेगा ॥
छोड़ अछूत–प्रवाह, छूत–रस में न सनूँगा ।
कन्या-धन अपनाय, मीन से मिथुन बनूँगा ॥

(२५९)

श्री बराह भगवान, घुरघुरा कर यों बोले।
प्रथम हमारे साथ, शूकरी बन कर होले॥
चलदे सबको छोड़, न मन मैला कर प्यारी।
देख महासुखमूल, मनोहर माँद हमारी॥

(२६०)

कर सकता है कौन, हमारी सी शुभ करणी।
धर काँपों पर, मार, असुर को लाये धरणी॥
यश का सूचक श्वेत*, शब्द पदवी इव धारा।
होगा तुझ पर क्यों न, आदि अधिकार हमारा॥

(२६१)

शूकर का विटवाद, सुना सब ने रद खींसे।
बदल कनौती श्याम, घुड़मुहाँ हेकड़ हींसे॥
मैं ने पर-हित-हेतु, कण्ठ अपना कटवाया।
हयग्रीव शुभ नाम, अश्वमुख होकर पाया॥

(२६२)

पर-हितकारी धीर, धर्म पर मरने वाला।
जाति, देश पर प्राण, निछावर करने वाला॥
कहिये अपना ठीक, जोड़ समझूँ किसको मैं।
यदि चुप हो तो क्यों न, वरूँ पहले इसको मैं॥

---

* श्वेतवाराह।

(२६३)

हयग्रीव-कृत दर्प, दबोच नृसिंह दहाड़े।
हम ने घास-खदोर, सहस्रों पकड़ पछाड़े॥
अपना पुण्य-प्रताप, प्रगल्भ बखान रहे हो।
क्या हम सबको पाप,-परायण मान रहे हो॥

(२६४)

कठिन स्तम्भ विदार, नीति पर न्याय नचाया।
बधिक दैत्य को मार, दयाकर भक्त बचाया॥
इतना बढ़िया काम, न कोई कर सकता है।
हम से पहले अन्य, इसे क्यों वर सकता है॥

(२६५)

नरहरि का दुर्नाद, सुना फणपति फुंकारे।
भूल गये सब देव, हाय! उपकार हमारे॥
जो हम अपने एक, फणा पै भूमि न धरते।
तो कब याजक लोग, तुम्हारा पालन करते॥

(२६६)

चढ़ छाती पर विष्णु, प्रलय करके सोते हैं।
नाभिकमल पै ब्रह्म, कल्पतरु फिर बोते हैं॥
यों हम जगदाधार, मूल-कारण उर धारें।
फिर भी पहली बार, न इस पै प्रेम पसारें॥

(२६७)

इस प्रकार से गाल, अमर-मुखियों के बाजे।
वज्र धार कर कोप, लमक लेखर्षभ * गाजे॥
काढ़े नयन सहस्त्र, भाल-दृग फूट रहा था।
जिससे शोणित रूप, रोष-रस छूट रहा था॥

(२६८)

कर प्रजेश की हानि, प्रजा ने कब सुख भोगा।
क्या सुरपति का मान, सुरों से प्रथम न होगा॥
गीदड़-धमकी, धौंस, ऐंठ, अड़ से न डरूँगा।
पहले इसका हाथ, पकड़ मैं मेल करूँगा॥

(२६९)

त्र्यम्बक, विष्णु, विरंचि, आदि सबसे कहता हूँ।
उच्च इन्द्र-पद पाय, न मैं दबके रहता हूँ॥
इसके ऊपर आज, अटक मेरी अटकेगी।
हट जावो हठ छोड़, नहीं तो अब खटकेगी॥

(२७०)

कर पूरा प्रतिवाद, दिव्य रसिया फटकारे।
सुन बातें विपरीत, चिढ़े, चमके सुर सारे॥
पौरुष की जय बोल, विजय के मार गपोड़े।
टूट पड़े कर कोप, शस्त्र मघवा * पर छोड़े॥

---

* इन्द्र।

(२७१)

मार मार कर व्यग्र, नाकनायक * कर डाले ।
चक्र, त्रिशूल, कृपाण, गदा, पट्टिश, इषु, भाले॥
भट वृन्दारकवृन्द, विकट बादल से फाड़े ।
वज्र-विलास बगार, इन्द्र ने पटक पछाड़े ॥

(२७२)

यों प्रचण्ड रण रोप, लड़े सब देव लड़ाके ।
निरखे शस्त्र-प्रहार, सुने घन-घोर धड़ाके ॥
वीर लगे बल-दर्प, दिखाने अपना अपना ।
खुल गई मेरी आँख, होगया सपना सपना ॥

(२७३)

रात बिताकर पिण्ड, अशुभ सपने से छूटा ।
चढ़ते ही दिन और, कष्ट सिर पर यों टूटा ॥
करने लगी विलाप, विकल मेरी महतारी ।
घोर अमङ्गल नाद, सुना उपजा भय भारी ॥

(२७४)

मज्जन करना छोड़, उतर आँगन में आई ।
मा की कुगति विलोक, शोक-वश मैं घबराई ॥
सुन्दर भूषण, वस्त्र, समस्त उतार दिये थे ।
चुड़ियाँ फोड़, मलीन, फटे पट धार लिये थे ॥

---

* इन्द्र ।

(२७५)

कहता था कर जोड़, मदन,*मा! क्या करती है।
हरिमाया पर मूँड़, फोड़ कर क्यों मरती है॥
अटका प्लेगपिशाच, मरा सब कुनबा मेरा।
फिर भी धीरज धार, बना मैं अनुचर तेरा॥

(२७६)

बात मदन की काट, विकलता में रिस घोली।
जननी मुझ को देख, मिसमिसाकर यों बोली॥
बिछुड़ा वर, वैधव्य, गर्भ में देकर तुझको।
जियत न छोड़ा बाप, राँड अब खाले मुझको॥

(२७७)

जननी ने इस भाँति, पिता का मरण बखाना।
पाय मदन से पत्र, बाँच कर निश्चय जाना॥
उमड़ा दारुण शोक, घोर संकट का घेरा।
उपजा तन में ताप, हुआ व्याकुल मन मेरा॥

(२७८)

पीट पीट शिर अश्रु,-प्रवाह बहाकर रोई।
समझी अपना हाय! हितू अब रहा न कोई॥
हाय! हाय!! पितु हाय!!! हाय बहुबार पुकारी।
मेरी कुगति निहार, डरी दुखिया महतारी॥

---

* कमला की मा का वैतनिक मित्र।

(२७९)

बोली बस बस मान, धीर धर कमला बाई।
मरती है शिर फोड़, फोड़ कर क्यों बिन आई॥
बिगड़ा जीवन, काल, कटा संकटमय मेरा।
अब न मिलेगा बाप, किसी विधि बिटिया! तेरा॥

(२८०)

शोक बिसार बिसार, विकल माता बकती थी।
हृदय-वेदना दूर, भला कब हो सकती थी॥
फिर भी रोदन रोक, कथन माना जननी का।
पर दाहक संताप, न निकला जलते जी का॥

(२८१)

धर्म-परायण पूज्य, पिता के गुणगण गाये।
शोकासन पर बैठ, दिवस दो तीन बिताये॥
बुलवाये कुलदेव, पुरोहित, पञ्च, पुजारी।
मृतक-श्राद्ध की बात, लगी करने महतारी॥

(२८२)

सब की सम्मति मान, बनाकर बानिक सारा।
पद्धति के अनुसार, 'सनातनधर्म' पसारा॥
दान दिया भरपूर, पूजकर कुल-कन्या को।
देकर बढ़िया भोज, किया परितृप्त पिता को॥

(२८३)

लपक ले गये माल, पुरोहित, पण्डित, पाधा ।
किया नगर में नाम, काम धन से सब साधा॥
जननी को इस भाँति, मिली भरपेट बड़ाई ।
कुछ दिन बीते टाँग, सुकृत की ओर अड़ाई ॥

(२८४)

बोल मुझे कर प्यार, कहा सुन कमला बेटी ।
सुन ले बढ़िया बात, धर्मरस-रीति लपेटी ॥
मुझ को राँड बनाय, नाथ सुरधाम सिधारे ।
कटते हैं सुखहीन, कुदिन जीवन के सारे ॥

(२८५)

श्रेयस्कर सुविचार, एक उमगा है मन में ।
अब तो रहना ठीक, नहीं घर के बन्धन में ॥
लेकर तुझको साथ, तीरथों पर बिचरूँगी ।
दर्शन, मज्जन, पान, महासुख मान करूँगी ॥

(२८६)

यद्यपि मुझ को इष्ट, न था कुविचार निकम्मा ।
तौ भी रुचि विपरीत, पड़ा कहना चल अम्मा!
सुनकर मेरी बात, बढ़ा साहस जननी का ।
निश्चित किया तुरन्त, दिवस चलने का नीका ॥

(२८७)

धर्म सुकृत की ओर, भक्ति-भाजन मन जोड़ा।
घर का किया प्रबन्ध, सुरक्षक चाकर छोड़ा॥
मा अपने अनुकूल, यथोचित कर तैयारी।
लेकर मुझको और, मदन को साथ सिधारी॥

(२८८)

पहले वह गोस्वामि,-सदन गोकुल का देखा।
जिसका ब्लाकट आदि, लिख चुके हैं 'शुभ' लेखा॥
व्रजमण्डल के अन्य, धाम सुप्रसिद्ध मझारे।
सब में ठाकुर ठोस, चेतना रहित निहारे॥

(२८९)

अवधपुरी में जाय, पाय रघुवर की झाँकी।
फिर देखी हनुमान, सुभट की प्रतिमा बाँकी॥
सरजू और प्रयाग, न्हाय झट पहुँची काशी।
निरखे गोल मटोल, विश्वनायक अविनाशी॥

(२९०)

उमड़ा परमानन्द, प्रेम उमगा पितरों का।
पहुँच गया में, दूर, किया उपताप मरों का॥
गूँद गूँद कर भात, पिण्ड लुड़काये फल से।
तर्पण किया समोद, शुद्ध फलगू के जल से॥

(२९१)

छवि देखी जगदीश,-भवन की परम सुहाई ।
धार वेश विपरीत, सभ्यता छुपकर छाई ॥
छुआ-छूत कर दूर, भेद-भ्रम से मुख मोड़ा ।
सब की जूठन खाय, धर्म का स्वरस निचोड़ा ॥

(२९२)

सेतुबन्ध अवलोक, ध्यान धर सीतावर का ।
देखा भवन विशाल, उमापति रामेश्वर का ॥
शिव का अङ्ग प्रसिद्ध, हटाकर पुष्प, उघारा ।
सुरसरिता का नीर, बोट भर छोड़ पखारा ॥

(२९३)

पहुँच द्वारिका धाम, गोमती* जलनिधि न्हाई ।
पुष्कर आदि विलोक, देव-सरिता-तट आई ॥
देखा वह हरिद्वार, कुम्भ का अनमिल मेला ।
धींग सनातनधर्म, खेल जिसमें खुल खेला ॥

(२९४)

निरखे साधु, गृहस्थ, जुड़े अनमेल अखाड़े ।
पढ़ते थे मतवाद,-भेद के विकट पहाड़े ॥
सब ने धाम पवित्र, कर दिया मल से मैला ।
बढ़ विशूचिका रोग, रुद्रबल पाकर फैला ॥

---

* द्वारिका का तालाब ।

(२६५)

सटके ललना, लोग, रहे अक्खड़ भुतनंगे ।
पीट पीट कर पेट, मरे भुक्खड़ भिखमंगे ॥
बकते थे जड़, ऊत, निरक्षर, घोर घमंडी ।
पर्वत से कर काँपे, उतर कर चेती चंडी ॥

(२६६)

मदन हुआ बीमार, मरा परलोक सिधारा ।
जननी ने तन त्याग, दिया पर धीर न धारा ॥
इस प्रकार से घोर, कुगति की झंझट झेली ।
केवल मैं असहाय, हाय ! रहगई अकेली ॥

(२६७)

सिद्ध मनोरथ हाय, न महतारी कर पाई ।
पहुँची पति के पास, विपत्ति में आयु बिताई ॥
हुआ मुझे विधि वाम, किया सब ओर अँधेरा ।
कहती थी किस भाँति, कटे अब जीवन मेरा ॥

(२६८)

व्याकुल मन को थाम, भयानक शोक बिसारा ।
धर्म और जगदीश,-भजन का लिया सहारा ॥
अब तो मैं उपदेश, अमोल दिया करती हूँ ।
विधवा-दल का सर्व, सुधार किया करती हूँ ॥

(२९९)

संकट घोर समस्त, बाल-विधवा सहती हैं ।
करती नहीं विवाह, सदा व्याकुल रहती हैं ॥
वंचक, पामर पंच, जाति, कुल से डरती हैं ।
धार धार कर पाप, भार सिर पै मरती हैं ॥

(३००)

ब्रह्मचर्य व्रत धार, न राँडें रह सकती हैं ।
क्या मुझ से बद होड़, आपदा सह सकती हैं ॥
यदि नकार के साथ, लाज तज उत्तर देंगी ।
तो फिर जन्म बिगाड़, भला किसका कर लेंगी ॥

(३०१)

विधवा अक्षतयोनि, करें यदि व्याह दुबारा ।
तो उन पै कुछ दोष, न धरती है मनुधारा ॥
वैदिक देव दयालु, नहीं जिसके प्रतियोगी ।
उस पद्धति की चाल, किसी की कुगति न होगी ॥

(उपसंहार)

पाठक ! प्यार पवित्र, गर्भरण्डा पर कर लो ।
कमला की ध्रुवधर्म,-धीरता मन में धर लो ॥
करदो मुझे प्रसन्न, लेख से और वचन से ।
कवि का आदर, मान, कौन करता है धन से ॥